नागरिक जीवन

लेखक

कृष्णानन्द गुप्त

प्रकाशक

सरस्वती प्रकाशन मन्दिर

इलाहाबाद

संवत् १९९६

प्रकाशक—

सरस्वती प्रकाशन मन्दिर

जार्ज टाउन, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण

मूल्य १)

मुद्रक—

सुशीलचन्द्र वर्मा

सरस्वती प्रेस,

जार्ज टाउन, इलाहाबाद

वक्तव्य

मुझ से जब नागरिक शास्त्र पर बालकों के लिए एक पोथी लिखने का आग्रह किया गया तो मैं चिन्ता में पड़ गया। अपनी अयोग्यता का तो पूरा ज्ञान मुझे था ही। साथ ही मैंने देखा कि नागरिक शास्त्र हिन्दी के लिए बिलकुल नया विषय है। जिस विषय पर हिन्दी में अभी वयस्क पाठकों के लिए भी अच्छी किताबें नहीं लिखी गयीं, उस पर बालकों के लिए कुछ लिखना तो और भी मुश्किल है। समान वयस्क यात्री के साथ कठिन रास्ता भी सुगमता से तय हो जाता है, परन्तु ऐसे मार्ग पर जहाँ प्रत्येक पद पर ठोकर लगने का डर हो, बालकों को संग लेकर चलना अपने साथ उनको भी विपत्ति में डालना है।

परन्तु फिर भी मैंने साहस किया। पुस्तक की जो रूप-रेखा और संक्षेप विषय-सूची मुझे दी गयी उसे अपना पथ-प्रदर्शक मान कर रास्ते पर चल पड़ा। परन्तु किताब जब पूर्ण हुई, और आदि से अन्त तक जब उस पर मैंने एक दृष्टि डाली तो देखा कि मैं मार्ग-भ्रष्ट हो गया हूँ। बालकों के लिए किताब लिखने जाकर मैं अपने लिए एक किताब लिख गया हूँ। लेखकों से ऐसी ग़लती रोज़ होती है। परन्तु अपने लिए लिखी गयी उस किताब को दूसरों से पढ़ने का आग्रह करने की

ग़लती मैंने नहीं की। पाण्डुलिपि को मैंने हिफ़ाज़त से रख दिया, वक़्त ज़रूरत स्वयम् उठा कर पढ़ने के लिए।

फिर भी मैं नागरिक शास्त्र पर अपने ढँग से बालकों के लिए एक किताब लिखना चाहता था। मैं एक ऐसी किताब चाहता था जिसमें नागरिक-जीवन के प्रारम्भिक सिद्धान्त ऐसे रोचक ढंग से लिखे गये हों कि बालक उसे कहानी की तरह आदि से अन्त तक एक साँस में पढ़ जायँ। ऐसी किताब लिखना सहज नहीं है। फिर भी उसका ज़ो रूप मेरे मन में बँधा हुआ था, शिक्षा-विभाग की वर्तमान आवश्यकता के साथ उसका पूरा समझौता करके मैंने फिर से किताब लिखी। इस बार अपने लिए ही नहीं, बल्कि बालकों के लिए भी।

किताब जब पूर्ण हुई तो मैंने देखा कि मैं मार्ग नहीं भूला हूँ। क्योंकि अब की बार मैं अपने रास्ते पर चला था।

हिन्दी में जहाँ अभी विज्ञान और राजनीति के साधारण शब्दों से भी हमारा परिचय नहीं है, और जहाँ पाठकों का तत्सम्बन्धी साधारण ज्ञान नहीं के बराबर है, इस प्रकार की किताबें लिखना सच-मुच बड़ा कठिन है। या तो ऐसी किताब इतनी सरल हो जाती है कि उसे आप कूड़े में भी फेंक सकते हैं, और या फिर इतनी शुष्क और दुरूह कि आप उससे ऊब जायँगे। अँगरेज़ी में विज्ञान, दर्शन, ज्योतिष आदि विषयों को लोकप्रिय शैली में लिखने की जो प्रथा चल पड़ी है, हिन्दी में अभी उसके लिए देर है। अभी हमारा यही ख्याल है कि विषय

जितना कठिन होगा, लेखन-शैली भी उतनी ही दुरूह होती है। परन्तु अँगरेज़ी में इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि ऐसी पुस्तक यदि माता-पिताओं के लिए लिखी गयी है तो बालक भी उसमें रस ले सकें। यदि बालकों के लिए लिखी गयी है तो अभिभावक भी केवल उसे पढ़ ही न सकें, बल्कि उससे अपनी ज्ञान-वृद्धि भी कर सकें।

अपनी इस पुस्तक के प्रथम खंड को लिखने में मैंने अँगरेज़ी गद्य की इसी शैली का अनुसरण किया है। मैंने इस बात का प्रयत्न किया है कि बालक निर्भीक होकर मेरे साथ चलें। मेरे और उनके बीच सहानुभूति जन्मे। इसलिए मैंने उनको निर्देश नहीं दिये। उनके सामने विधि-निषेध उपस्थित नहीं किये। मैंने उनसे कहीं यह नहीं कहा कि 'तुम्हें यह करना चाहिए', 'यह नहीं करना चाहिए।' मैंने अपने को उनके साथ मिलाने का प्रयत्न किया है।

और जब मैं उनको अपने साथ लेकर चला हूं तो अपनी ज़िम्मेदारी का मैंने ख़्याल रक्खा है। मैंने कोशिश की है कि सिद्धान्तों और परिभाषाओं की कठिन दीवार तोड़ कर वे मेरे साथ चलें, और मात्र ज्ञान के वाहक न बन कर जिज्ञासु बनें।

विषय के प्रति उनके मन में मैंने जिज्ञासा उत्पन्न करने की कोशिश की है। इसलिए मैंने प्रश्न किये हैं, और उनका जवाब कहीं-कहीं अधूरा छोड़ दिया है। और चूंकि मेरे सामने यह उद्देश्य नहीं था कि स्कूल के विद्यार्थी ही यह किताब पढ़ें मैंने उसे व्यापक रूप दिया है। वास्तव

में मैंने उसे साधारण पाठकों के लिए लिखा है। इसलिए पुस्तक का अन्तिम भाग मैंने अपनी इच्छा के विरुद्ध ही लिखा है। इस दूसरे भाग में अपनी शैली की रक्षा करना मेरे लिए कठिन हो गया। उसका कारण यह हुआ कि बालकों से मैं यह प्रश्न तो कर सका हूँ कि 'राज्य क्या है ?' परन्तु काउन्सिल क्या है, कांग्रेस क्या है, गांधी क्या हैं, ऐसे प्रश्न मैं सहसा उनसे नहीं कर सका। यह उनके साधारण ज्ञान का अपमान होता। फिर भी मैंने इन प्रश्नों का जवाब दिया है।

शासन-पद्धति को मैंने अधिक स्थान नहीं दिया। क्योंकि यह विषय अब स्कूलों में सब जगह पढ़ाया जाता है। जैसा मैंने कहा है, भाषा को मैंने यथा सम्भव सरल बनाया है। अपने बाल-पाठक को मैंने बिलकुल अनजान मान लिया है। इसलिए सम्भव है एक ही बात कई जगह दुहरायी गयी हो। परन्तु यह स्वाभाविक था।

मैंने कोशिश की है कि कठिन शब्दों का प्रयोग न हो। यहाँ तक कि आवश्यक वैज्ञानिक शब्दों का भी मैंने हठ-पूर्वक बहिष्कार किया है। परन्तु फिर भी मेरा ख़्याल है कि जिसे हम हिन्दुस्तानी कहते हैं उस भाषा में वैज्ञानिक—साहित्य की सृष्टि हमारे लिए सहज नहीं होगी। हमें संस्कृत और अरबी तथा फ़ारसी के शब्द लेने ही होंगे। कठिन शब्दों के प्रयोग से भाषा कठिन होती है यह ग़लत है। बल्कि कहना यह चाहिए कि सही लफ़्ज़ों के प्रयोग से भाषा में सुगमता आती है। और इन शब्दों के लिए एक ओर यदि हमें देहात की ओर जाना

होगा तो दूसरी ओर संस्कृत और अरबी-फ़ारसी के कठिन शब्दों की भी शरण लेनी होगी। इस प्रकार के कठिन शब्दों के प्रयोग से भाषा कठिन नहीं होती। बल्कि उसमें दुरूहता तब आती है जब विचार उलझे हुए होते हैं। इसलिए कठिन शब्दों के प्रयोग से हिन्दुस्तानी यदि डरेगी तो उच्च साहित्य और विज्ञान की रचना असम्भव हो जायगी। मैंने कहीं-कहीं जान-बूझ कर ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, यह दिखाने के लिए कि भाव को प्रकट करने के लिए कठिन परन्तु यथार्थ संज्ञावाची शब्द कितने ज़रूरी होते हैं।

फिर भी मेरा विश्वास है कि मैंने भरसक सरल बनने की कोशिश की है। वास्तव में मेरी इच्छा यह रहा है कि हिन्दी में एक ऐसी सहज सुबोध शैली का प्रचार हो, जिसमें कठिन या सरल शब्दों के फेर में न पड़ कर, लोकप्रिय ढंग से कठिन विषयों को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया हो। मैं यह नहीं कहता कि इस पुस्तक में उस शैली का नमूना मौजूद है। परन्तु अपने नये अनुष्ठान के लिए हमें ऐसे शैलीकार लेखक चाहिए जो विषय को रोचक ढंग से लिखने और प्रतिपादित करने का सामर्थ्य रखते हों। यूनिवर्सिटी की शुष्क पुस्तकों तक ही उनका ज्ञान सीमित न हो, बल्कि अपने विषय से उन्हें सच्चा स्नेह भी हो। ज्ञान का बोझ जिनके सिर पर है वे बालकों के लिए हमेशा अच्छी किताबें नहीं लिख सकते। मैं चाहता हूँ कि इस सचाई की ओर शिक्षा विभाग का ध्यान आकृष्ट हो।

लेखक—

विषय-सूची

———

नागरिक जीवन

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

यदि तुम रोज़ अखबार पढ़ते हो तो तुम्हें अकसर उसमें इस प्रकार की बातें पढ़ने को मिलेंगी :—

'युक्त प्रान्त की सरकार पेट्रोल पर टैक्स लगा रही है। परन्तु कुछ मैम्बर उसका विरोध कर रहे हैं। क्या उससे जनता को लाभ होगा? क्या पेट्रोल का टैक्स बढ़ जाने से मोटर-लारियों का किराया नहीं बढ़ जायेगा? टैक्स का यह पैसा आख़िर में क्या जनता को नहीं देना पड़ेगा?' परन्तु जो लोग टैक्स लगाने के पक्ष में है, उन्होंने जवाब दिया—'जिन लोगों के पास पैसा है वही मोटर पर चढ़ते हैं। ग़रीबों के पास इतना पैसा नहीं कि वे मोटर रक्खें या उस पर सफ़र करें। इसलिए पेट्रोल पर टैक्स

लगाने से जनता का कोई नुक़सान न होगा। जिनके पास पैसा है उन पर टैक्स लगना चाहिए। क्योंकि वे टैक्स दे सकते हैं। मोटरों के दौड़ने से ही सब से ज्यादा सड़कें खराब होती हैं। इनकी मरम्मत के लिए पैसा कहाँ से आयेगा? इसके अलावा प्रान्त में नयी सड़कों की भी ज़रूरत है। सड़कें बनने से प्रान्त के व्यापार की उन्नति होगी। जिससे आम जनता को आखिर में लाभ होगा। इसलिए पेट्रोल पर टैक्स अवश्य लगना चाहिए। सड़कों का सब से ज्यादा फ़ायदा तो अमीर लोग ही उठाते हैं। तब वे टैक्स क्यों न दें?'

अखबार में इस प्रकार की और भी कई बातें तुम्हें पढ़ने को मिलेंगी। उदाहरण के लिए, प्रान्तीय सरकार बड़ी तनख्वाह पाने वाले नौकरों पर टैक्स लगा रही है। काउन्सिल के अधिकाँश मैम्बर इसके पक्ष में हैं। उनका कहना है कि, 'प्रान्त में जो स्कूल, कालेज और अस्पताल इत्यादि हैं उनका सबसे ज्यादा फ़ायदा शहर के लोग ही उठाते हैं। देहात में रहने वाले ग़रीबों को उनसे कोई फ़ायदा नहीं होता। ऐसी हालत में जो लोग लम्बी तनख्वाहें पाते हैं, उन पर टैक्स लगना चाहिए, क्योंकि वे टैक्स का बोझा बर्दाश्त कर सकते हैं। यदि वे अपनी तनख्वाह का थोड़ा हिस्सा ग़रीब भाइयों के हित के लिए खर्च कर देंगे तो इसमें उनका कोई नुक़सान न होगा। देहात में अच्छी शिक्षा चाहिए।

अच्छे अस्पताल चाहिए। टैक्स का रुपया इसी काम में ख़र्च होगा। सरकार उसे अपने पास नहीं रक्खेगी। और न अपने किसी काम में ख़र्च करेगी। बल्कि प्रान्त की सार्वजनिक उन्नति के कामों के लिए ही यह टैक्स लगाया जा रहा है। उससे अस्पताल वग़ैरह तो खुलेंगे ही, साथ ही छोटी तनख़्वाह पाने वाले चौकी-दारों, चपरासियों वग़ैरह की तनख़्वाहें भी बढ़ायी जायँगी।'

परन्तु दूसरे दल के मैम्बर बिल का विरोध कर रहे हैं। जिन लोगों की तरफ़ से वे काउन्सिल में गये हैं, उनकी तरफ़ से उनका कहना है कि 'सरकार को यदि रुपया चाहिए तो हमें इससे मतलब? हम टैक्स क्यों दें? लोगों की तनख़्वाहें बढ़नी चाहिए न कि घटनी। सरकार को यदि अस्पताल खोलने हैं, अथवा छोटी तनख़्वाहें पाने वाले नौकरों की तनख़्वाहें बढ़ानी हैं तो वह दूसरी मद में ख़र्चा कम करके अपना बजट पूरा क्यों नहीं करती। वह हमारा नुक़सान क्यों करती है? यह तो वही हुआ कि कल्लू के फ़ायदे के लिए मल्लू की गर्दन पर छुरी फेरी जाय। हम यह टैक्स देने को तैयार नहीं हैं। और यदि सरकार ने यह टैक्स लगाया तो हम सब मिलकर उसका विरोध करेंगे।'

यह बिल काउन्सिल में पेश है और चूँकि बहुमत उसके पक्ष में है, इसलिए आशा की जाती है कि थोड़े से संशोधन के साथ वह पास हो जायगा।

इसके अतिरिक्त यदि तुम रोज़ अखबार पढ़ते हो तो वाइसराय की जो बड़ी काउन्सिल है, उसके सम्बन्ध में भी तुम्हें इस प्रकार के समाचार पढ़ने को मिलते होंगे :—

'शारदा बिल में अब कई सुधार हो गये हैं। उनके अनुसार अब लोग कम-उम्र बच्चों की शादी आसानी से नहीं कर सकेंगे। भारत सरकार ने यह बहुत अच्छा किया।'

'केन्द्रीय सरकार ने पोस्टकार्ड की दर इस साल भी नहीं घटायी।'

'केन्द्रीय एसेम्बली में एक बिल पेश है जिसके मंजूर हो जाने पर स्त्रियाँ अपने अयोग्य पतियों को तलाक़ दे सकेंगी। इस प्रकार के बिल की बड़ी आवश्यकता थी। समाज का इससे बड़ा सुधार होगा।'

प्रान्तीय काउन्सिलों तथा भारत सरकार की एसेम्बली की कार्रवाइयों के सम्बन्ध में इस प्रकार के समाचार नित्य ही अख़बारों में प्रकाशित होते रहते हैं। परन्तु तुमने क्या कभी यह भी सोचा है कि ये काउन्सिलें क्या चीज़ हैं? सरकार क्या है? उससे हमारा क्या सम्बन्ध है? काउन्सिलों में जो मैम्बर जाते हैं उन्हें कौन चुनता है? उनका चुनाव क्यों होता है? चुनाव का उद्देश्य क्या है? सरकार टैक्स क्यों लगाती है? क़ानून क्यों बनते हैं? अखबारों में यह जो अकसर लिखा रहता है कि

देश बहुत ग़रीब है। लोगों को भरपेट खाना नहीं मिलता है। बच्चों की मृत्यु-संख्या प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है, परन्तु सरकार का ध्यान इधर बिलकुल नहीं है। इन सारी बातों का क्या मतलब है? अखबारों में ऐसी बातें क्यों निकलती हैं? कौन उन्हें छापता है? उनसे क्या उद्देश्य सिद्ध होता है? उनमें हम दिलचस्पी क्यों लें? उनसे हमें कोई मतलब?

इसके बाद अभी अखबारों में तुमने पढ़ा होगा कि युक्तप्रान्त की जो काँग्रेस सरकार है, उसने १५ जनवरी को सारे प्रान्त में बड़ी धूमधाम से साक्षरता-दिवस मनाया। जलूस निकाले गये और सब जगह बड़ी-बड़ी सभाएँ की गयीं। और क़रीब ५ लाख आदमियों ने अपढ़ जनता को साक्षर बनाने के पवित्र कार्य में भाग लेने की प्रतिज्ञा की। प्रान्त के सभी बड़े-बड़े नेता इसमें शामिल थे, यहाँ तक कि प्रान्तीय सरकार के प्रधान मन्त्री ने भी प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तखत किये। प्रतिज्ञा का मंशा यह था कि जिसने दस्तखत किये वह एक वर्ष के भीतर कम से कम एक स्त्री या पुरुष को शिक्षित बनायेगा। अथवा इस कार्य के लिए दो रुपया चन्दा देगा जिसके द्वारा उसकी तरफ से साल भर के भीतर एक आदमी शिक्षित किया जा सके।

साक्षरता-दिवस के इस जलसे में क्या तुमने भाग लिया? तुममें से किसी ने साल भर के भीतर एक स्त्री या पुरुष को साक्षर

बनाने की प्रतिज्ञा की? यदि हाँ, तो ऐसा क्यों किया? तुमने इसकी आवश्यकता क्यों समझी? देश में साक्षरता की आवश्यकता क्यों है? देश ग़रीब क्यों है? क्यों ऐसे क़ानून की ज़रूरत है जिससे अपढ़ और ग़रीब जनता का भला हो? क्यों समाज-सुधार के लिए क़ानून चाहिए? अख़बारों में इस तरह की तमाम बातों की जो चर्चा रहती है, वह सब क्या है? क्या इन प्रश्नों का जवाब कभी तुमने सोचा है?

अभी तुम केवल अपने जीवन की समस्या पर ही विचार कर रहे हो। 'कहाँ पढ़ोगे, कितना पढ़ोगे, किस स्कूल में पढ़ोगे, पढ़ाई का ख़र्चा कहाँ से आयेगा और पढ़-लिख कर क्या करोगे?' ये सब बातें अकसर तुम्हारे दिमाग़ में आती होंगी। ये सब तुम्हारे जीवन की अपनी समस्याएँ हैं। परन्तु जब तुम पढ़-लिख कर बड़े होगे तो तुम देखोगे कि अपने जीवन की समस्या के अलावा घर की समस्या भी तुम्हारे सामने मौजूद है। उसके बाद गाँव की समस्या, ज़िले की समस्या और देश की समस्या—ये सभी समस्याएँ एक दिन तुम्हारे सामने आयेंगी। गाँव में यदि पंचायत है तो सम्भव है तुम पंच बनने की कोशिश करो। सम्भव है डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की मैम्बरी के चुनाव के लिए खड़े होओ। और यह भी बहुत मुमकिन है कि तुम में से कोई प्रान्त की अथवा भारत सरकार की, बड़ी काउन्सिल की मैम्बरी का उम्मेदवार बने।

उस वक्त तुम्हें अपने घर की समस्याओं के अलावा गाँव अथवा ज़िला अथवा देश की तमाम समस्याओं पर विचार और उनका हल भी करना होगा। अभी तुम अपनी अथवा अपने घर की चिन्ता के सिवा और किसी बात की चिन्ता करते नज़र नहीं आते। परन्तु आगे चलकर अपने गाँव की समस्याओं पर भी तुम्हें विचार करना होगा। गाँव में शिक्षा का कैसा प्रबन्ध है? सड़कें कैसी बनी हैं? लोगों को स्वच्छ पानी पीने को मिलता है या नहीं? गाँव के निवासियों का स्वास्थ्य ठीक है या नहीं? इन सारी बातों पर तुम्हें विचार करना पड़ेगा और उनका निर्णय भी करना पड़ेगा।

तुम स्वयम् डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अथवा काउन्सिल के मैम्बर बनो या नहीं। परन्तु तुम्हें यह देखना होगा कि जिस व्यक्ति को तुमने मैम्बर बनाकर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में भेजा है, वह तुम्हारे गाँव अथवा नगर का सच्चा प्रतिनिधि है या भूठ-मूठ के लिए मैम्बर बना है। तुम्हें सदैव अपने गाँव की भलाई का ख़याल करना होगा; क्योंकि गाँव की भलाई से ही तुम्हारी भलाई है। गाँव से अलग होकर तुम नहीं रह सकते। गाँव में यदि शिक्षा का ठीक प्रबन्ध नहीं तो तुम्हारे बच्चे कहाँ पढ़ेंगे? गाँव में यदि अस्पताल नहीं, तो जरूरत पड़ने पर दवा-दारू के लिए कहाँ जाओगे? गाँव में यदि पक्की सड़कें नहीं तो बरसात

म. बैलगाड़ी का सफ़र कैसे करोगे ? तुम्हें ही इन प्रश्नों का जवाब देना होगा। तुम्हें ही इस बात का निर्णय करना होगा कि तुम जो टैक्स देते हो, उसका उचित उपयोग होता है या नहीं। तुम्हारे गाँव में स्कूल है या नहीं। सड़कों पर रोशनी का ठीक प्रबन्ध है या नहीं।

इन सारे प्रश्नों पर तुम्हें ठीक उसी प्रकार विचार करना होगा जिस प्रकार तुम अपने घर की तमाम ज़रूरतों और समस्याओं पर परिवार के अन्य लोगों के साथ बैठकर विचार करते हो। तुम अपने गाँव के होनहार युवक हो। तुम अपने देश के भावी नेता हो। देश का कल्याण तुम्हारे हाथ में है। तुम्हें अपने देश की अनेक समस्याओं पर विचार करना है। तुम्हें ही यह निर्णय करना होगा कि तुम्हारा देश अशिक्षित बना रहे, अथवा शिक्षित बन कर अन्य देशों की तरह अपनी तरक्की करे। तुम्हें ही यह देखना होगा कि तुम्हारा देश हमेशा ग़रीब बना रहे या सुख और सम्पत्ति से भरा-पूरा हो।

यह सब तुम तभी कर सकते हो जब तुम्हें अपने कर्त्तव्यों का सही ज्ञान हो; जब तुम्हें यह मालूम हो कि अपने और अपने देश के प्रति तुम्हारे क्या कर्त्तव्य हैं। किस तरह और कितना तुम अपने देश का भला कर सकते हो। देश के प्रबन्ध सम्बन्धी मामलों में बोलने का तुम्हें कितना हक़ है। इन बातों

का ज्ञान जब तक तुम्हें नहीं होगा, तुम अपने देश का सच्चा हित नहीं कर सकते। तुम्हें यह जानने की भी आवश्यकता है कि जिसे हम रोज़ सरकार के नाम से पुकारते रहते हैं, वह क्या चीज़ है। क्या वह कोई विशेष व्यक्ति है? क्या वह राजा का कोई प्रतिनिधि है? क्या वह एक आदमी है? अथवा कई व्यक्तियों से मिलकर बनी हुई कोई संस्था है? वह क्या है? उसके प्रति हमारे क्या कर्त्तव्य हैं? और हमारे प्रति उसके क्या फ़र्ज़ हैं?

इन सारे प्रश्नों का जवाब देने के उद्देश्य से ही यह किताब लिखी गयी है। आशा है इसे तुम ध्यानपूर्वक पढ़ोगे और अपने देश के सच्चे नागरिक बनने का प्रयत्न करोगे।

दूसरा अध्याय

कुछ परिभाषाएँ

राज्य, शासन, सरकार, नागरिक आदि शब्दों का व्यवहार हम रोज़ करते हैं, परन्तु उनका सही अर्थ नहीं जानते। इसके पहले कि हम आगे चलें, हमें इन शब्दों का सही अर्थ सीख लेना चाहिए।

राज्य क्या है ?

भारतवर्ष एक देश है। हम सब उस देश के निवासी हैं। अँगरेज़ हमारे राजा हैं। हम सब इंगलेंड के राजा की प्रजा हैं। भारतवर्ष एक पराधीन राज्य है।

जापान एक देश है। जापानी वहाँ के राजा हैं। जापान एक स्वतंन्त्र देश है।

सभी देशों को तुम राज्य नहीं कह सकते। राज्य उसी देश को कहेंगे जहाँ राजा हो, या शासन का उचित प्रबन्ध हो। उत्तरी ध्रुव में ऐसे बर्फ़ीले मैदान हैं, जहाँ आदमी रहते हैं;

परन्तु शासन का वहाँ कोई प्रबन्ध नहीं, कोई संगठन नहीं, कोई व्यवस्था नहीं। उन देशों को राज्य नहीं कह सकते।

इसलिए जिस देश की

(१) एक निश्चित सीमा हो;

(२ जहाँ थोड़ी या अधिक संख्या में आदमी रहते हों;

(३) जहाँ शासन का उचित प्रबन्ध हो;

उसे राज्य कहते हैं।

देश और राज्य एक चीज़ नहीं हैं।

राज्य के भीतर जो लोग रहते हैं उन्हें प्रजा कहते हैं।

यह कोई ज़रूरी नहीं कि राजा एक आदमी हो। यह कोई ज़रूरी नहीं कि राजा बाहर का आदमी हो। यह भी कोई ज़रूरी नहीं कि जो हमेशा से राज्य करता आया है, उसीका उत्तराधिकारी या वारिस तख़्त पर बैठे।

राजा की ज़रूरत होती है शासन-प्रबन्ध के लिए। प्रजा चाहे तो आप अपना शासन कर सकती है। आज-कल इसी प्रकार का शासन अच्छा समझा जाता है।

एक आदमी जब राजा होता है तो वह स्वेच्छाचारी हो सकता है। प्रजा पर वह मनमाने अत्याचार कर सकता है; मनमाने टैक्स लगा सकता है; जो जी में आये सो कर सकता है।

राजा पहले जमाने में ईश्वर का अवतार समझा जाता था। वह जो चाहता था वही होता था। उसकी इच्छा ही क़ानून थी। ऐसे राजा अब नहीं रहे। प्रजा अब समझ गयी है कि राजा ईश्वर का अवतार नहीं है, वल्कि वह अच्छे या बुरे कामों के लिए उसके नज़दीक ज़िम्मेवार है।

इसलिए इंगलैंड में, अमेरिका में, रूस में, जापान में, सभी जगह अब प्रजा का राज्य है। इंगलैंड में राजा है; परन्तु वह केवल राज्य करता है। शासन प्रजा करती है।

राज्य करने का अर्थ है, अपने नाम से शासन-सूत्र चलाना। इंगलैंड का राजा अपने नाम से शासन करता है। वह स्वयम् शासक नहीं है।

इंगलैंड एक स्वतन्त्र राज्य है। क्योंकि वहाँ अपना राजा है। काश्मीर एक परतन्त्र राज्य है। क्योंकि वहाँ का राजा इंगलैंड के राजा के अधीन है। परन्तु भारतवर्ष को हम राज्य नहीं कह सकते। क्योंकि यहाँ अपना राजा नहीं है। इसलिए दरअसल वह राज्य नहीं है। वह एक देश है जो इंगलैंड के राजा के अधीन है। साधारण अर्थ में उसे हम राज्य कह लें, यह दूसरी वात है। जितने राज्य हैं, उन्हें हम देश कह सकते हैं। परन्तु सब देशों को हम राज्य नहीं कह सकते। राज्य उसी देश को कहेंगे जहाँ अपना राजा हो। यह दूसरी वात है कि

वह किसी दूसरे राजा के अधीन हो और उसे कर, ख़िराज या टैक्स देता हो।

जैसा हमने कहा है, देश का शासन एक आदमी के हाथ में भी हो सकता है, और कई आदमी मिलकर भी उसका शासन कर सकते हैं। इसलिए सरकार कई तरह की होती है।

सरकार क्या है?

सरकार शब्द का हम रोज़ इतना अधिक प्रयोग करते हैं कि उसका एक विशेष अर्थ मन में ज़म गया है। युक्तप्रान्त की सरकार कहने से हम तुरन्त समझ जाते हैं कि हमारा मतलब शासन की उस सारी मशीन से है जो हमारे लिए क़ायदा-क़ानून बनाती है और उनकी पाबन्दी हमसे करवाती है। शासन की इस मशीनरी में क़ायदा-क़ानून बनाने के लिए अलग इन्तज़ाम है। उन क़ायदा-क़ानूनों का ठीक पालन होता है या नहीं, इसकी देखभाल के लिए अलग प्रबन्ध है। इसलिए सरकार कोई एक व्यक्ति नहीं है, व्यक्तियों का कोई एक समूह भी नहीं। राज्य को सरकार नहीं कहते। क्योंकि राज्य शासन नहीं करता। शासन सरकार करती है।

सरकार के भेद

१—एकतन्त्र सरकार—जहाँ शासन-सूत्र एक व्यक्ति के द्वारा संचालित होता है और प्रजा का उसमें कोई हाथ नहीं होता, उसे एकतन्त्र सरकार कहते है।

इस प्रकार का व्यक्ति (राजा) यदि अच्छा हो तो प्रजा का बहुत-कुछ हित कर सकता है। परन्तु बहुधा राजा स्वेच्छाचारी होते हैं। वे हर मामले में अपना हित पहले देखते हैं, प्रजा का हित बाद में।

इस प्रकार के एकतन्त्र शासन के कई भेद हो सकते हैं।

एक तो वह जहाँ राजा बिलकुल स्वेच्छाचारी होता है। उस पर कोई अंकुश नहीं होता—जो मन में आता है सो करता है। दूसरा वह जहाँ राजा पर प्रजा का अंकुश होता है।

इंगलैंड का शासन ऐसा ही है। राजा वहाँ अपने मन के मुताबिक काम नहीं कर सकता। उसे प्रजा की इच्छा के अनुसार चलना पड़ता है।

२—प्रजा-तन्त्र सरकार—जहाँ प्रजा स्वयम् शासन का प्रबन्ध करती है उसे प्रजा-तन्त्र सरकार कहते हैं।

प्रजा-तन्त्र सरकार में प्रजा द्वारा चुने हुए व्यक्तियों के हाथ में शासन की सारी बागडोर होती है और सब काम बहुमत से होता है।

प्रजा के सब आदमी एक साथ शासन का काम नहीं देख सकते। इसके अलावा सब आदमी समान योग्य भी नहीं होते। इसलिए जनता जिन्हें योग्य समझती है, उन्हें चुनती है। ये चुने हुए व्यक्ति एक जगह एकत्र होकर देश की समस्याओं पर विचार

करते हैं; नियम और क़ानून बनाते हैं; और प्रजा के कष्टों को दूर करने का उपाय सोचते हैं।

इस प्रकार की सरकार को हम एक प्रकार की पंचायती सरकार कह सकते हैं।

आजकल के ज़माने में यह सब से अच्छी सरकार समझी जाती है। क्योंकि इसमें एक आदमी की ख़ुशी कोई चीज़ नहीं होती, जो कुछ होता है वह सब की इच्छा से होता है। यदि कोई नया क़ानून बनना है, तो वह एक आदमी की ख़ुशी से नहीं बनेगा। उस पर सब मिलकर विचार करेंगे। 'क़ानून बनना चाहिए या नहीं? जनता को उससे कोई लाभ होगा या नहीं? यदि लाभ होगा तो कितना? नुक़सान होगा तो कितना?' इन सारे प्रश्नों पर पूर्ण रूप से विचार हो चुकने के बाद बहुमत से जो तय होगा वही किया जायगा।

प्रजातन्त्र की कई क़िस्में हैं। यह कोई ज़रूरी नहीं कि जहाँ राजा हो वहाँ प्रजातन्त्र क़ायम हो ही न सकता हो।

प्रजातन्त्र का मतलब है प्रजा का शासन। कहीं पर प्रजा को शासन के कम अधिकार प्राप्त हैं, कहीं पर ज्यादा। कहीं पर और ज्यादा। कहीं पर सम्पूर्ण प्रजा का राज्य है।

इंगलैंड में राजा है। परन्तु प्रजा को शासन के कामों में अधिक से अधिक हिस्सा लेने का अधिकार है। देश के लिए

क़ायदा-क़ानून बनाने और प्रबन्ध करने के लिए जो सभाएँ हैं, उन सब में जनता के चुने हुए आदमी मौजूद रहते हैं। वे लोग बहुमत से जो तय करते हैं वही होता है।

अमेरिका में प्रजातन्त्र है। क़ानून बनाने आदि के लिए प्रजा द्वारा निर्वाचित लोगों की सभाएँ भी हैं। परन्तु वे लोग हर पाँचवें वर्ष अपने लिए एक शासक चुनते हैं, जिसे प्रेसिडेन्ट कहते हैं। इस प्रेसिडेन्ट की कोई ज्यादा ज़िम्मेवारी नहीं होती। क़ानून वग़ैरह प्रजा द्वारा चुने हुए व्यक्ति ही बनाते हैं।

कुछ देश ऐसे भी हैं जहाँ प्रजातन्त्र राज्य है। परन्तु प्रजा द्वारा चुना हुआ प्रधान नायक ही वहाँ का सर्वेसर्वा है। जर्मनी और इटली ऐसे ही देश हैं। इन देशों के डिक्टेटर या अधिनायक जो चाहते हैं वही होता है। वे प्रजा से नाम-मात्र के लिए पूछते हैं।

एक प्रकार की पंचायती सरकार और होती है। इसे संघ- अथवा संघ-शासन कहते है। आज-कल अख़बारों में तुम इसका नाम अकसर पढ़ते होगे, क्योंकि हिन्दोस्तान में संघ-शासन क़ायम करने की चर्चा चल रही है।

संघ-शासन में कई छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्य मिलकर एक हो जाते हैं और अपना एक संघ क़ायम करते हैं। संघ का उद्देश्य ताक़त बढ़ाना होता है। किसी एक छोटे राज्य पर बाहर

का कोई शत्रु यदि आक्रमण कर दे तो वह सहज में अपनी रक्षा नहीं कर सकता। परन्तु कई राज्य जब मिलकर एक हो जाते हैं, और अपना एक पंचायती राज्य क़ायम कर लेते हैं तो उनकी शक्ति बढ़ जाती है और एक दूसरे की उन्नति में मदद मिलती है। संघ सरकार बनाने का यही उद्देश्य होता है।

राज्यों के ऐसे मामलों का प्रबन्ध, जिनका ताल्लुक़ सब राज्यों से समान होता है, इस संघ-सरकार द्वारा ही होता है। सब राज्यों की फ़ौज एक होती है। पोस्टआफ़िस के मुहकमे का इन्तज़ाम भी एक होता है। बाहर के देशों से व्यापार करने अथवा किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने आदि की नीति भी एक होती है। अपने घर का बाक़ी इन्तज़ाम सब राज्य अलग-अलग करते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, पुलिस, उद्योग-धन्धे, इन सबका इन्तज़ाम अपना-अपना अलग होता है। संघ सरकार उनमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकती। यह उसी प्रकार की बात हुई जैसे कई बड़े-बड़े व्यापारी मिलकर अपना एक दफ़्तर बना लें; अपना एक इन्तज़ाम कर लें और एक नाम से व्यापार शुरू कर दें। परन्तु कारबार सब का अलग रहे।

संघ सरकार में इस प्रकार दो प्रकार की सरकारें होती हैं। एक तो सम्मिलित रूप से सब राज्यों का इन्तज़ाम करने वाली सरकार, दूसरी, हरेक राज्य की अपनी अलग सरकार।

पहली सरकार को केन्द्रीय सरकार कहते हैं और दूसरी को स्थानीय सरकार। हमारा ख्याल है इन नामों को तुम अखबारों में प्रायः पढ़ते होगे। ब्रिटिश सरकार हमारे देश में इसी प्रकार का शासन जारी करना चाहती है।

प्रान्तों को स्थानीय स्वराज्य मिल गया है। हरेक प्रान्त की अपनी अलग सरकार बन गयी है और शासन प्रजा द्वारा चुने गये व्यक्तियों द्वारा हो रहा है। अभी इन प्रान्तों को एक करके संघ सरकार का बनाना बाक़ी है।

केन्द्रीय सरकार का रूप अभी वैसा ही है जैसा आज से दो वर्ष पहले था।

संघ सरकार में हरेक राज्य एक दूसरे से बिलकुल स्वतन्त्र होता है। केन्द्रीय सरकार उनके घरेलू मामलों में ज़रा भी हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

हमारे देश का हरेक प्रान्त स्वतन्त्र राज्य नहीं है। प्रान्तों को अभी इतनी स्वतन्त्रता नहीं मिली। परन्तु संघ तो स्वतन्त्र राज्यों का ही बनता है। इसलिए संघ-शासन यदि यहाँ क़ायम किया जाय तो क्या वह सच्चा संघ-शासन होगा ?

रूस में पूर्ण प्रजातन्त्र क़ायम है। वहाँ सारे देश को छोटे-छोटे पंचायती राज्यों में बाँट दिया गया है। इसके बाद उन सारे राज्यों को संघटित करके एक बड़ा पंचायती राज्य क़ायम

कर दिया गया है। रूस का यह पंचायती राज्य आदर्श पंचायती राज्य माना जाता है।

यह तो उन देशों की बात हुई जहाँ राजा नहीं हैं; अथवा यदि हैं तो उनका कोई महत्त्व नहीं है; और प्रजा को ही शासन के अधिकार प्राप्त हैं।

परन्तु कुछ देश ऐसे भी हैं जहाँ की प्रजा को शासन-सम्बन्धी मामलों में हस्तक्षेप करने का ज्यादा अधिकार नहीं है। यदि है भी तो बहुत कम। इन देशों के शासक प्रजा को शासन के अधिकार देना पसन्द नहीं करते। उनका ख्याल है कि ऐसा करने से उनकी शक्ति कम हो जायेगी। परन्तु यह उनकी ग़लती है। प्रजा को मित्र बनाकर ही वे रह सकते है।

कुछ पराधीन देशों को शासन के अधिकार मिल गये हैं। आयरलैंड ऐसा ही देश है। वह पहले भारतवर्ष की तरह ही इंगलैंड के राजा के अधीन था। परन्तु अब वह स्वतन्त्र है।

कुछ देशों को ये अधिकार मिल रहे हैं। कुछ को मिलना बाक़ी हैं। भारत एक ऐसा ही देश है। उसे शासन के अधिकार धीरे-धीरे मिल रहे हैं। परन्तु अभी बहुत से मिलने को बाकी हैं। वे सब अपने आप मिलेंगे सो बात नहीं है। उनकी प्राप्ति के लिए हमें प्रयत्न करना होगा।

तीसरा अध्याय

नागरिक और उसके अधिकार (१)

राज्य क्या है, यह तुम समझ गये। उसका क्या उद्देश्य है, यह भी तुम को ज्ञात हो गया। राज्य अपने आप नहीं बना। इसकी सृष्टि मनुष्य ने की। राज्य का वर्तमान समय में जैसा रूप है, पहले ऐसा नहीं था। सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य ने अपने को संगठित करने की ज़रूरत समझी। उसने अपने लिए एक सरदार तलाश किया। वही आगे चलकर राजा बना। अथवा यह भी बहुत मुमकिन है कि शुरू में जिसमें ताक़त थी वह राजा बन गया। राजा की उत्पत्ति किसी प्रकार हुई हो। उसे चाहे ईश्वर ने बनाया हो, चाहे मनुष्य-समाज ने बनाया हो। चाहे वह खुद अपनी ताक़त से बना हो। परन्तु उसका पहले जो रूप था, वह आज नहीं है। आज से हज़ार वर्ष पहले प्रजा के साथ राजा का जो सम्बन्ध था, वह अब नहीं रह गया है। अब राजा और प्रजा के सम्बन्ध को लेकर समाज के

विचार बदल गये हैं। राजा को अब ईश्वर का रूप नहीं माना जाता, और न प्रजा को राजा का अन्ध दास ही। राजा अब प्रजा से कोई अलग चीज़ नहीं है। बल्कि वह अपनी प्रजा का एक अंग है। राजा और प्रजा के सम्बन्ध को लेकर अब बड़ी छानबीन होने लगी है।

राजा क्या है? उसका क्या कर्त्तव्य होना चाहिए? क़ानून क्या चीज़ है? उसका उद्देश्य क्या है? राजा का प्रजा से क्या सम्बन्ध है? इन सब विषयों की अब बड़ी गहन विवेचना होने लगी है। इसका एक अलग शास्त्र ही बन गया है। इस शास्त्र को राजनीति शास्त्र कहते हैं। इस राजनीति शास्त्र की एक शाखा नागरिक शास्त्र है। राजनीति शास्त्र का नाम कदाचित् तुमने सुना होगा। परन्तु नागरिक-शास्त्र नयी चीज़ है। इसलिए तुम्हें बता देना उचित है कि यह क्या है। क्योंकि इस किताब में शुरू से आखिर तक जिन विषयों का वर्णन हुआ है, वे इसी नागरिक-शास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं।

नागरिक शास्त्र का सीधा अर्थ है वह शास्त्र जिसमें नागरिक के सम्बन्ध में कुछ लिखा-पढ़ा गया हो।

परन्तु नागरिक क्या है?

नागरिक शब्द की व्याख्या करने से ही तुम समझ सकोगे कि नागरिक शास्त्र क्या चीज़ है।

तुम कहोगे कि किसी बड़े क़स्बे या नगर के निवासी को नागरिक कहते हैं। परन्तु इस परिभाषा से काम नहीं चलेगा। राजनीति शास्त्र में इस शब्द का एक दूसरा ही अर्थ होता है।

नागरिक का अर्थ है वह व्यक्ति जो

(१) किसी राजा के राज्य में रहता हो

(२) जहाँ उसे अपना सब काम करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो

(३) जहाँ उसके जान-माल की पूरी हिफ़ाज़त हो

(४) जहाँ उसे राज्य के शासन-सम्बन्धी मामलों में वोट देने का अधिकार हो, और

(५) जहाँ रह कर वह राज्य और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का ठीक पालन करता हो।

जो किसी राज्य में नहीं रहता वह नागरिक नहीं कहलायेगा। राजनीति शास्त्र को ऐसे आदमी से मतलब नहीं। क्योंकि राजनीति शास्त्र में राज्य-सम्बन्धी बातों की ही चर्चा हो सकती है।

परन्तु (अ) "अपना सब काम करने की पूरी स्वतन्त्रता" से क्या मतलब है? काम कई तरह के हो सकते हैं। स्वतन्त्रता भी कई तरह की हो सकती है। फिर यह कम भी हो सकती है। ज्यादा भी हो सकती है।

इसके बाद (ब) जान-माल की हिफ़ाज़त से क्या मतलब है? कोई उसकी हिफ़ाज़त क्यों करे? करे भी तो किस हद तक करे?

फिर (स) जहाँ उसे राज्य के शासन सम्बन्धी मामलों में वोट देने का अधिकार हो—'इसका क्या मतलब है ? और

(द) राज्य और समाज के प्रति कर्त्तव्य पालन करने का क्या अर्थ है ? इन कर्त्तव्यों का क्या रूप हो ? उनके पालन का क्या उद्देश्य हो ?

नागरिक शास्त्र इन्हीं सब प्रश्नों की विवेचना करता है। इन प्रश्नों का थोड़ा या बहुत जवाब तुम्हें इस पोथी में मिलेगा, क्योंकि यह नागरिक शास्त्र की ही पोथी है।

नागरिक शास्त्र उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें राज्य के भीतर नागरिक के कर्त्तव्यों और अधिकारों की विवेचना की जाती है।

राज्य में स्वतन्त्रता-पूर्वक रहने, वोट देने, शासन-सम्बन्धी मामलों में अपनी राय ज़ाहिर करने आदि के अधिकारों को नागरिकता के अधिकार कहते हैं। और राज्य तथा समाज में रह कर हरेक नागरिक को अपने जिन कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए, उन्हें नागरिक के कर्त्तव्य कहते हैं।

तुम देखोगे कि नागरिक का मतलब नगर-निवासी ही नहीं है। बल्कि हम सभी नागरिक हैं। चाहे देहात में रहते हों चाहे शहर में; चाहे क़स्बे में रहते हों, चाहे नगर में—हम सभी नागरिक हैं। परन्तु क्या हम वास्तव में नागरिक हैं ? पोथी पढ़ लेने के बाद इस प्रश्न का ज़वाब तुम स्वयम् दे सकोगे।

चौथा अध्याय

नागरिक और उसके अधिकार (२)

नागरिक के अधिकार क्या हैं ? राज्य के भीतर स्वतन्त्रता-पूर्वक रहने और काम करने का क्या अर्थ है ? स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं कि हम चोरी भी कर सकें। चोरी करने से राज्य की ओर से दंड मिलता है। इसका यह मतलब भी नहीं कि हम शराब पियें। क्योंकि शराबी को समाज बुरा कहता है। राज्य के भीतर स्वतन्त्रतापूर्वक रहने का अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति

(१) स्वयम् जान और माल की रक्षा कर सके

(२) विना किसी बाधा के अपने धर्म का पालन कर सके

(३) अपनी उन्नति के लिए वह जिन कामों को ज़रूरी समझता है उनका निर्वाह कर सके

(५) बाक़ायदा मुक़द्दमा चलाये विना और अपराध सिद्ध हुए विना उसे राज्य की ओर से उसे कोई दंड न दिया जा सके। और

(६) राज्य के मामलों में अपनी राय ज़ाहिर करने का उसे पूरा अधिकार हो।

इसका यह मतलब नहीं कि नागरिक के अधिकारों की कोई नपी-तुली संख्या है। इन अधिकारों की कोई गिनती निश्चित नहीं की जा सकती। और न सब देशों में इनका एक-सा अर्थ ही लगाया जाता है। सब देशों की प्रजा को नागरिकता के समान अधिकार प्राप्त नहीं होते। किसी देश की प्रजा को कम होते हैं, कसी को ज्यादा। जिस देश में प्रजा को नागरिकता के जितने अधिक अधिकार प्राप्त होते हैं, उस देश की प्रजा उतनी ही अधिक स्वतन्त्र समझी जाती है और वहाँ की शासन-व्यवस्था उतनी ही अधिक अच्छी और परिपूर्ण। हमारे देश की कई रियासतों में प्रजा के साधारण अधिकार भी सुरक्षित नहीं हैं। सरकारी कर्मचारी प्रजा पर मनमाना अत्याचार करते हैं। जनता की जान-माल की हिफ़ाज़त का प्रबन्ध नहीं है। बाक़ायदा मुकद्दमा चलाये बिना प्रजा के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को दंड दे दिया जाता है। सरकारी कर्मचारियों के इस अन्याय के ख़िलाफ़ प्रजा कुछ कह नहीं पाती। यदि कहने का साहस करती है तो कठोर दंड दिया जाता है। अख़बारों में तुमने पढ़ा होगा कि आज-कल देशी रियासतों की प्रजा अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है। प्रजा और शासकों में लड़ाई चल रही है। प्रजा का कहना है कि

शासन-प्रबन्ध में हमारी राय ली जानी चाहिए। परन्तु शासक इसके लिए तैयार नहीं हैं। यह उनकी गलती है। प्रजा के अधिकारों की रक्षा का वे न तो स्वयम् कोई प्रबन्ध करते हैं और न शासन के कार्य में उसे कोई भाग ही लेने देते हैं।

इस चर्चा से प्रजा और नागरिक का भेद तुम्हारी समझ में आ गया होगा। प्रजा और नागरिक एक चीज़ नहीं हैं। नागरिक को तो तुम एक राज्य की प्रजा कह सकते हो। परन्तु हरेक राज्य की प्रजा को नागरिक नहीं कह सकते। नागरिक उसी राज्य की प्रजा को कहेंगे जिसे नागरिकता के अधिकार प्राप्त हों—जो राज्य के शासन-सम्बन्धी मामलों में अपनी राय दे सकता हो, उसकी आलोचना कर सकता हो, राज्य के अत्याचारों के विरुद्ध अखबारों में लिख सकता हो, व्याख्यान दे सकता हो, और स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी उन्नति के काम कर सकता हो। इस दृष्टि से देशी राज्यों के निवासियों को प्रजा ही कहेंगे। क्योंकि वे कई मामलों में राजा के अधीन हैं। उन्हें नागरिक नहीं कहेंगे। यह सचमुच बुरी बात है। आजकल के ज़माने में नागरिक एक सम्मान-सूचक पदवी है। जो नागरिक नहीं है, अथवा नागरिकता के अधिकारों के लिए लड़ाई नहीं लड़ता, अन्य स्वतन्त्र देशों के निवासी उसे अच्छी नज़र से नहीं देखते। वे उसे पराधीन देश का निवासी समझते हैं। और पराधीन कह कर उसका अपमान करते हैं।

इंगलैंड, अमेरिका, रूस आदि देशों की प्रजा को नागरिकता के पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। वहाँ का शासन-सूत्र प्रजा के हाथ में ही है। प्रजा की ओर से योग्य और अनुभवी व्यक्ति शासन-कार्य के लिए चुने जाते हैं। इन व्यक्तियों की सभा को वहाँ पार्लियामेन्ट कहते हैं।

ये योग्य व्यक्ति ग़लती न करते हों सो बात नहीं। वे अक्सर ग़लती करते हैं। परन्तु प्रजा उनकी आलोचना कर सकती है। वह सरकार के ख़िलाफ़ लेख लिख सकती है। सरकार की नुक़्ता-चीनी कर सकती है। यह एक ख़ास बात है। इंगलैंड की प्रजा को शासन-कार्य के लिए अपनी इच्छा के अनुसार योग्य व्यक्ति चुनने का ही अधिकार प्राप्त नहीं है; बल्कि वह उन योग्य व्यक्तियों की कड़ी से कड़ी आलोचना करने के लिए भी स्वतन्त्र है। इसके लिए उसे कोई दंड नहीं दिया जाता। परन्तु जर्मनी और इटली में ऐसा नहीं है। वहाँ का शासन-सूत्र यद्यपि प्रजा द्वारा निर्वाचित व्यक्तियों के हाथ में है, परन्तु वहाँ खुल्लम-खुल्ला कोई सरकार की आलोचना नहीं कर सकता। वहाँ सरकार का अपना दल है। उस दल के ख़िलाफ़ जाने की जो हिम्मत करता है, वह अक्सर गोली से उड़ा दिया जाता है। नागरिकता के हक़ों का इससे ज्यादा और क्या अपहरण होगा? परन्तु इंगलैंड में ऐसा नहीं है। वहाँ की प्रजा स्वतन्त्रतापूर्वक अपने विचार

प्रकट कर सकती है। बिना पूरी जाँच-पड़ताल किये, और बाक़ायदा मुक़द्दमा चलाये बिना, वहाँ किसी को दंड नहीं दिया जा सकता।

यह बहुत बड़ी बात है। इसका अँगरेज़ों को यदि अभिमान हो तो यह उचित ही है। वे अपने को अभिमानपूर्वक एक ऐसे देश का निवासी कहते हैं जहाँ उनकी जान-माल की हिफ़ाजत का ही पूर्ण प्रबन्ध नहीं हैं, बल्कि अपने विचारों को प्रकट करने, और मर्ज़ी के मुताबिक़ किसी भी मत पर चलने का पूर्ण अधिकार भी प्राप्त है।

हमें आशा है अब तुम समझ गये होगे कि नागरिक का क्या अर्थ है, नागरिकता के अधिकार क्या चीज़ हैं, और उनकी प्राप्ति के लिए सब को प्रयत्न क्यों करना चाहिए।

राज्य की ओर से हमारी स्वतन्त्रता का अपहरण न हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि राज्य के प्रति हम अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहें। तभी राज्य की ओर से हमारे अधिकारों की रक्षा हो सकती है। अपने अधिकारों के लिए राज्य से हम लड़ाई भी उसी वक़्त लड़ सकते हैं। इसलिए राज्य की ओर से बने हुए क़ानूनों की रक्षा करना नागरिक का पहला कर्त्तव्य है। क़ानून अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। आम जनता की हित की दृष्टि से बनाये गये क़ानूनों को ही अच्छे क़ानून कहते हैं।

बुरे क़ानून से हमें मतलब नहीं। जब तुम बड़े होगे तब अच्छे और बुरे क़ानून के भेद को स्वयम् समझने लगोगे।

नागरिक का यह कर्त्तव्य भी है कि राज्य की ओर से जो टैक्स लगाया जाता है, उसे देता रहे। यह टैक्स एक प्रकार का चन्दा है। सार्वजनिक कामों के लिए हम अकसर चन्दा इकट्ठा करते हैं। टैक्स भी एक प्रकार का चन्दा है जिसे सरकार शासन-प्रबन्ध के काम के लिए जनता से वसूल करती है। सरकार यदि टैक्स वसूल न करे तो वह नयी-नयी सड़कें कहाँ से बनवाये? स्कूल और अस्पताल कहाँ से खोले? जनता की शिक्षा का प्रबन्ध कहाँ से करे? जनता की रक्षा के लिए पुलिस कहाँ से लाये? सरकार यह सब प्रजा के लिए ही करती है। स्कूल प्रजा के लिए खोलती है। अस्पताल प्रजा के लिए बनाती है। पुलिस भी प्रजा की रक्षा के लिए तैनात करती है। यदि वह ऐसा नहीं करती और टैक्स का रुपया दूसरे फिज़ूल कामों में खर्च करती है तो जनता को पूरा अधिकार है कि सरकार से जवाब तलब करे।

सरकार जब टैक्स लगाती है तो उसका हिसाब भी देगी! यह एक बहुत मोटी सी बात है। तुम्हारे स्कूल में सम्भव है सालाना जलसा होता हो। सम्भव है जलसे के लिए चन्दा इकट्ठा किया जाता हो। तब टैक्स की बात तुम अच्छी तरह समझ

सकोगे। तुम यह कभी पसन्द नहीं करोगे कि जलसे में तुमने जो चन्दा दिया है, उसका दुरुपयोग हो और कोई उसे अपने निजी काम में खर्च कर ले। तुम्हें इस बात का पूरा अधिकार है कि उस चन्दे का हिसाब माँगो। यह चन्दा हैसियत के मुताबिक़ ही माँगा जाता है। किसी से यदि एक पैसा लिया जाता है, तो एक दूसरे लड़के से दो आने माँगे जाते हैं। चन्दा सभी प्रसन्नता-पूर्वक इसलिए देते हैं कि एक सार्वजनिक कार्य में उसका उपयोग होगा। परन्तु किसी ग़रीब लड़के से एक पैसे की जगह यदि ज़बर्दस्ती दो आने वसूल किये जाँय तो यह ज़्यादत्ती होगी।

टैक्स के सम्बन्ध में भी यही बात है। टैक्स जनता के हित के लिए लगाया जाता है। ग़रीब आदमी टैक्स नहीं दे सकते। टैक्स उन लोगों पर ही लगाया जाना चाहिए जो टैक्स देने के योग्य होते हैं। टैक्स देने में उनको इसलिए आपत्ति नहीं होती कि वह सार्वजनिक हित के कामों में खर्च किया जाता है। यदि टैक्स का रुपया सरकार अपने पास रख ले, अथवा किसी ऐसे काम में ख़र्च कर दे जिससे जनता का कोई भला न हो, तो यह सरकार की ग़लती होगी। परन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि सरकार टैक्स का अधिकाँश रुपया जनता के हित में ख़र्च न करके अपने ऊपर खर्च कर लेती है। और जब उसे अपने ख़र्च के लिए और रुपयों की ज़रूरत होती है तब वह अमीर और ग़रीब का

ख़्याल न कर के जनता पर मनमाना टैक्स बढ़ा देती है। जनता तब उसका विरोध कर सकती है। टैक्स देना बन्द कर सकती है। सरकार यदि मान गयी तब तो ठीक है। अन्यथा जनता और सरकार में लड़ाई छिड़ सकती है। ऐसा अकसर उसी देश में होता है, जहाँ का शासन एक व्यक्ति के अधिकार में होता है। परन्तु एकतन्त्र (एक व्यक्ति का) शासन अब प्रायः सभी देशों में ख़तम हो गया है। जनता पर अब अनुचित टैक्स नहीं लगाये जाते और न उनका उतना दुरुपयोग ही होता है। क्योंकि प्रायः सभी देशों में शासन-सूत्र अब जनता के हाथ में है। ऐसे देशों में सरकार यदि अधिक और अनुचित टैक्स लगाने का प्रयत्न करती है तो जनता उसका विरोध करती है।

टैक्स कई प्रकार के होते हैं। एक तो सीधा टैक्स, जो अमीरों की आमदनी पर लगाया जाता है। इनकम टैक्स, सुपर-टैक्स, मालगुज़ारी आदि की गिनती ऐसे ही टैक्सों में होती है। इस प्रकार के टैक्स को प्रत्यक्ष टैक्स या कर कहते हैं। दूसरे प्रकार का टैक्स यद्यपि जनता को अपनी गाँठ से नहीं देना पड़ता, परन्तु फिर भी घूम-फिर कर वह उसी के सिर आता है। इसे अप्रत्यक्ष टैक्स कहते हैं। यह टैक्स अधिकतर नित्य के व्यवहार में आने वाली वस्तुओं पर लगाया जाता है। हमारे देश का नमक-कर इसका उदाहरण है। टैक्स लगने की वजह

से नमक मँहगा मिलता है। इस प्रकार के टैक्स अच्छे नहीं माने जाते, क्योंकि उनसे ग़रीबों का नुक़सान होता है।

भारत सरकार देश भर में टैक्स लगाती है। प्रान्तीय सरकारें अपने-अपने प्रान्त में टैक्स लगाती हैं। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अपने-अपने जिलों में टैक्स लगाते हैं। टाउन एरिया अपने क़स्बे में ही टैक्स लगाते हैं। इस सारे टैक्स का दुरुपयोग तो नहीं होता, देश का रुपया फ़िजूल कामों में ख़र्च तो नहीं होता, इसे कौन देखेगा ?

क्या तुम्हारे यहाँ टाउन एरिया है ? म्यूनिसिपैलिटी है ? डिस्ट्रिक्ट बोर्ड है ?

यदि तुम्हारे यहाँ टाउन एरिया है तो क्या यह देखना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है कि तुम सब से जो टैक्स वसूल किया जाता है, उसका उचित उपयोग होता है या नहीं।

पाचवाँ अध्याय

क़ानून क्या है ?

इलाहाबाद की बात है। एक दिन रामविलास नाम का एक विद्यार्थी शाम के वक़्त अपनी साइकिल पर सवार होकर घर लौट रहा था। सड़क पर उस वक़्त रोशनी हो गयी थी। रामविलास ने इसका कुछ ख़्याल नहीं किया। मगर चौराहे के नज़दीक से गुज़रते वक़्त सिपाही ने जब उसे रोका तो उसे ख़्याल आया कि साइकिल में लैम्प नहीं है। परन्तु अब कोई उपाय नहीं था। सिपाही ने उसे देख लिया था। नोटबुक निकाल कर उसने रामविलास की साइकिल का नम्बर नोट कर लिया। उसके तीन-चार दिन बाद उसे एक सरकारी सम्मन मिला, जिसमें ऊपर की घटना का ज़िक्र करके लिखा था कि वह बिना रोशनी के साइकिल पर जा रहा था, इसलिए उसका चालान कर दिया गया है। अदालत में हाज़िर होकर उसे यदि कुछ कहना हो तो कहे। सम्मन में अदालत का नाम था और हाज़िर होने की तारीख़ भी थी।

नियत तारीख को रामविलास मजिस्ट्रेट की अदालत में हाजिर हुआ। वहाँ वह सिपाही भी मौजूद था। सिपाही ने मजिस्ट्रेट के सामने बयान दिया कि रामविलास की साइकिल में उस दिन रोशनी नहीं थी। यह बात वह ईमानदारी से कह रहा है। रामविलास ने इसे स्वीकार किया। मजिस्ट्रेट ने तब उस पर एक रुपया जुर्माना करके और यह ताकीद करके कि वह भविष्य में ऐसा नहीं करेगा, उसे छोड़ दिया।

बेचारे रामविलास पर एक रुपया जुर्माना क्यों हो गया? उसने किसी का सिर नहीं तोड़ा था। अपनी साइकिल किसी से भिड़ायी नहीं थी। फिर भी उस पर एक रुपया जुर्माना हो गया।

यह जुर्माना उस पर क्यों हुआ? इसलिए कि उसने जुर्म किया था।

प्रायः सभी बड़े शहरों में सूर्यास्त के बाद मोटरों, साइकिलों और इक्कों में रोशनी लगाकर चलने का नियम है। इस नियम का मंशा यह है कि अँधेरे में एक दूसरे से कोई टकरा न जाय। रात के वक्त तेजी से दौड़ती हुई मोटरों, साइकिलों और बग्घियों में यदि रोशनी न हो तो इसका क्या परिणाम हो, तुम स्वयम् सोच सकते हो। एक मिनट चलना मुश्किल हो जाय और कितनी बग्घियाँ और मोटरें एक दूसरे से टकरा कर चकनाचूर

हो जायँ ! इसलिए यह नियम बना हुआ है कि सूर्यास्त के बाद कोई साइकिल, या मोटर, या बग्घी, बिना रोशनी के सड़क पर न चले।

यह नियम किसी एक आदमी की सुविधा के लिए नहीं बना, बल्कि पूरे समाज की सुविधा के लिए बना हुआ है। सड़क किसी एक आदमी की नहीं है। सब कोई उस पर समान रूप से चल सकते हैं। उस पर चलने का सब को समान अधिकार है। वहाँ हम कोई ऐसा काम नहीं कर सकते, जिससे दूसरों को चलने में असुविधा हो। हम अपने घर में उछल-कूद सकते हैं। परन्तु बीच सड़क में ऐसा करने का हमें क्या अधिकार? वहाँ हमें दूसरों की सुविधा-असुविधा का ख्याल रखना पड़ता है। रामविलास की साइकिल यदि किसी से टकरा जाती तो क्या होता? उसे स्वयम् तो चोट लगती ही, परन्तु उससे दूसरे राहगीर का भी सिर फूट सकता था। वह अपना सिर भले फोड़ लेता, परन्तु किसी दूसरे की जान खतरे में डालने का उसे क्या अधिकार? इसलिए सड़क पर चलने का, सब का जो समान अधिकार है, उसकी रक्षा के लिए क़ानून बनाने की ज़रूरत हुई कि सूर्यास्त के बाद कोई बिना रोशनी के साइकिल, या मोटर, या इक्का लेकर बाहर नहीं निकलेगा। यदि कोई ऐसा करेगा तो उसे दंड मिलेगा।

रामविलास ने इस नियम का पालन नहीं किया। उसने क़ानून भंग किया। इसलिए वह दंड के योग्य समझा गया। मजिस्ट्रेट ने उस पर एक रुपया जुर्माना किया।

क़ानून की पाबन्दी के लिए दंड की व्यवस्था ज़रूरी है। क्योंकि दंड का यदि भय न हो तो क़ानून की कोई परवा न करे।

क़ानून एक प्रकार का प्रतिबन्ध है, जिसकी अवज्ञा करने से दंड मिलता है। सार्वजनिक हित की रक्षा के लिए इस प्रकार के प्रतिबन्धों की बड़ी ज़रूरत होती है, क्योंकि समाज में सब व्यक्ति एक से नहीं होते। कुछ अच्छे होते हैं तो कुछ बुरे। कुछ शान्तिप्रिय होते हैं, तो कुछ ऊधमी। जो बुरे और ऊधमी हैं, वे अच्छे और शान्तिप्रिय व्यक्तियों को सतायें नहीं, इसके लिए क़ानून की ज़रूरत होती है। क़ानून का उद्देश्य सार्वजनिक हितों की रक्षा है।

क़ानून भंग करना जुर्म है। जुर्म के लिए प्रत्येक राज्य में उचित दंड की व्यवस्था होती है। इस व्यवस्था को दंड-विधान कहते हैं। जुर्म के अनुसार सज़ा मिलती है। छोटे जुर्म के लिए छोटी सज़ा मिलती है। बड़े जुर्म के लिए बड़ी सज़ा। यदि कोई चोरी करे तो उसे जेल जाना पड़ता है। यदि कोई हत्या करे तो उसे फाँसी की सज़ा मिलती है।

परन्तु बहुत से समाज-सुधारकों का कहना है कि दंड की यह व्यवस्था ठीक नहीं। आदमी मजबूर होकर ही बुरा काम करता है। यदि कोई चोरी करता है तो समझना चाहिए कि उसे पैसे की ज़रूरत थी, अथवा उसकी आदत खराब थी। इसलिए सभी सभ्य देशों में अपराधी को जेल की सज़ा तो दी जाती है, परन्तु वहाँ अपराधी के जीवन को सुधारने की पूरी कोशिश की जाती है। यदि कोई आदमी बुरा काम करे तो उसे सज़ा देने से ही काम नहीं चल जाता; बल्कि राज्य का यह कर्त्तव्य भी होना चाहिए कि वह उस व्यक्ति के जीवन को सुधारने का प्रत्यन करे, ताकि भविष्य में उसकी बुरा करने की आदत छूट जाय। इसलिए युरोप और अमेरिका के बड़े-बड़े देशों में जेलों का प्रबन्ध बड़ा अच्छा है। वहाँ अपराधी के साथ बुरा बर्ताव नहीं किया जाता। उसको गाली नहीं दी जाती, न उसको बेत लगाये जाते हैं। ऐसा करना वहाँ मनुष्यता के ख़िलाफ़ समझा जाता है। इस दृष्टि से हमारे देश में जेलों के सुधार की बड़ी आवश्यकता है।

छठा अध्याय

समाज का विकास

समाज के भीतर मनुष्य का स्थान—राज्य क्या है, और उससे नागरिक का क्या सम्बन्ध है, यह तुम समझ गये हो। परन्तु हम अकेले राज्य में नहीं रहते। हम समाज में भी रहते हैं। राज्य से हमारा जितना सम्बन्ध है उतना ही सम्बन्ध समाज से भी है।

राज्य के प्रति हमें कुछ कर्त्तव्य पालन करना पड़ते हैं। हमारे प्रति राज्य को भी कुछ फ़र्ज़ अदा करना पड़ते हैं। यदि ऐसा न हो तो दोनों में सामञ्जस्य स्थापित नहीं हो सकता। दोनों टिक नहीं सकते।

समाज के सम्बन्ध में भी यही बात है।

समाज क्या है?

समूह को समाज कहते हैं। परन्तु भीड़ भी एक प्रकार का समूह है। क्या भीड़ को समाज कहेंगे?

भीड़ का कोई उद्देश्य नहीं होता, कोई संगठन नहीं होता। जिसका जिधर जी चाहता है जाता है। जो जी में आता है करता है।

समाज में ऐसा नहीं होता।

दस आदमी जब एक जगह एकत्र होते हैं तो उनका कुछ उद्देश्य होता है, और काम करने का एक तरीक़ा भी।

इसलिए किसी एक उद्देश्य से इकट्ठे हुए मनुष्यों के संगठित समूह को समाज कहेंगे।

उदाहरण के लिए आर्य समाज। आर्य समाज का उद्देश्य है मिल-जुल कर आर्य-धर्म का प्रचार करना।

परन्तु आर्य समाज से भी बड़ा एक समाज है। आर्य समाज उस समाज का एक छोटा अंग-मात्र है। उस बड़े समाज को मानव-समाज कहते हैं।

मानव-समाज का उद्देश्य है मिल-जुल कर मनुष्य के लौकिक और पारलौकिक सुखों की वृद्धि करना।

समाज छोटा भी होता है। बड़ा भी। दस आदमियों का भी हो सकता है। दस लाख आदमियों का भी हो सकता है।

उसका उद्देश्य क्षणिक भी हो सकता है और स्थायी भी। किसी खास उद्देश्य से एकत्र हुआ छोटा समाज एक या दो दिन में बिखर जाता है। आज सभा हुई, कल बिखर गयी।

परन्तु मानव-समाज चिरन्तन है। वह अनादि काल से चला आ रहा है, और चलता रहेगा। न जाने मनुष्य कितने वर्ष से पृथिवी पर है। कुछ ठिकाना नहीं। कुछ एक लाख वर्ष कहते हैं। कुछ दस लाख वर्ष कहते हैं। तब से यह मानव-समाज बराबर चला आ रहा है। बराबर टिका हुआ है। बराबर टिका रहेगा।

हम उस मानव-समाज के एक अंग हैं। हम उसके एक सदस्य हैं। कितनी बड़ी बात है यह! कितने गौरव की बात!

आर्य समाज का सदस्य होने के लिए हमें आर्य-धर्मावलम्बी बनना पड़ता है। ब्रह्म समाज का सदस्य बनने के लिए हमें ब्रह्म-धर्मावलम्बी बनना पड़ता है। ईसाई समाज का सदस्य बनने के लिए हमें ईसाई-धर्मावलम्बी बनना पड़ता है। परन्तु मानव-समाज का सदस्य बनने के लिए यह कुछ नहीं करना पड़ता।

जन्म से ही हम मानव-समाज के सदस्य बन जाते हैं। जन्म से ही हम मानव-समाज के सदस्य हैं। कितना बड़ा समाज है यह! लाखों, करोड़ों, अरबों, उसके सदस्य हैं। आर्य-समाज या हिन्दू-समाज, या ईसाई-समाज, या सिक्ख-समाज, जितने भी समाज हैं, जितने भी मत-मतान्तर हैं, वह इस मानव-समाज की तुलना में समुद्र के आगे एक बूँद जैसे हैं।

इस मानव-समाज के हम एक सदस्य है, यह क्या बड़ी बात नहीं है? हम मानव-समाज में बैठने के अधिकारी हैं। हम मानव हैं। यह क्या हमारे लिए गौरव की बात नहीं है?

मनुष्य की श्रेष्ठता—दूसरे जीवधारी इस गौरव से वंचित हैं। बेचारे ढोर मनुष्य-समाज में बैठने के अधिकारी नहीं हैं। उनकी गणना हम पशुओं में करते हैं। उन्हें हम घृणा की नज़र से देखते हैं। परन्तु यदि वे मनुष्य नहीं तो इसमें उनका क्या दोष? मनुष्य सब जीवधारियों में श्रेष्ठ है सही, परन्तु इसका घमण्ड हम क्यों करें? और फिर मनुष्य-योनि में जन्म लेने से ही कोई मनुष्य नहीं बन जाता। हमें मनुष्य बनने का प्रयत्न करना पड़ता है। अपने भीतर हमें उन गुणों का विकास करना पड़ता है, पशुओं में जिनका अभाव है, और जिनकी वजह से हम मनुष्य कहलाते हैं। पशुओं में बुद्धि नहीं है। पशुओं में विचारने की शक्ति नहीं है। पशुओं में अच्छे या बुरे का ज्ञान नहीं है। पशुओं में दूसरों की सेवा करने, दूसरों के लिए कष्ट उठाने, दूसरों के लिए त्याग करने के भाव नहीं हैं। वे इन गुणों से वंचित हैं। दूसरे के लिए कष्ट उठाने में, दूसरे के लिए त्याग करने में, जीवन के मार्ग पर दूसरे की सुविधा-असुविधा का ख्याल कर के चलने में, जो सुख मिलता है, उसका उन्हें कोई अनुभव नहीं है। इसलिए वे पशु हैं।

मनुष्य में भी यदि ये गुण न हों तो उसमें और पशु में फिर फर्क़ ही क्या रहा !

मनुष्य खाता-पीता है। ढोर भी खाते-पीते हैं। मनुष्य सुख-दुःख अनुभव करता है। ढोर भी सुख-दुःख अनुभव करते हैं। मनुष्य चलता है, फिरता है, देखता है, सुनता है। पशु भी चलते हैं, फिरते हैं, देखते हैं और सुनते हैं। मनुष्य नींद लेता है। पशु भी नींद लेते हैं।

फिर मनुष्य में और पशु में अन्तर क्या रहा ? पशु से वह किस बात में श्रेष्ठ हुआ ?

इसी बात में कि मनुष्य पशु नहीं है। वह मनुष्य है। उसमें मनुष्यता के गुण हैं। उसमें बुद्धि है, विवेक है, तप है, ज्ञान है, सेवा है, त्याग है, परोपकार है। इन गुणों का विकास उसके हाथ में है। वह चाहे तो पूर्ण मनुष्य बन सकता है। और चाहे तो हमेशा ढोर बना रह सकता है।

पूर्ण मनुष्य बनना बड़ा कठिन है। फिर भी संसार में ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे पूर्णता के बहुत कुछ नज़दीक पहुँच चुके थे। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, श्री कृष्णचन्द्र, भगवान् बुद्ध, प्रभु ईसु मसीह, और पैग़म्बर मुहम्मद साहब ऐसे ही महान् पुरुषों में से थे। इनकी गिनती श्रेष्ठ पुरुषों में होती है। क्योंकि इनमें मनुष्यता का सर्वाधिक विकास हुआ था।

मनुष्य कितना बड़ा है! कितना महान् है! कैसा विलक्षण है! पशु से उसकी तुलना क्या! वह राम बन सकता है वह बुद्ध बन सकता है। वह ईसा बन सकता है। वह मुहम्मद बन सकता है। वह नैपोलियन बन सकता है। वह सब कुछ बन सकता है। इन सब से भी बड़ा बन सकता है। ऐसा कोई काम नहीं जो वह न कर सके।

मनुष्य की बुद्धिमत्ता—उसने रेल, तार और हवाई जहाज़ बनाये हैं। उसने बड़े-बड़े दूरबीन बनाये हैं। उसने अनेक प्रकार के अजीब यन्त्र बनाये हैं, जिनकी सहायता से वह बात की बात में सैकड़ों-कोस की यात्रा कर सकता है। घर बैठे हज़ारों मील दूर की बात सुन सकता है। साधारण आँख से न दीख पड़ने वाली सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु को भी देख सकता है। संसार का कोई जीवधारी बुद्धि और बल में उसका मुक़ाबला नहीं कर सकता। वह सिंह से भी अधिक बलशाली है। गिद्ध से भी अधिक तीक्ष्ण दृष्टिवान् है। हिरन से भी अधिक द्रुतगामी है। कैसा विलक्षण है वह!

अपनी बुद्धि के बल से उसने प्रकृति की सारी शक्तियों को अपना दास बना रक्खा है। हवा, पानी, आग और बिजली, सब उसके आगे हाथ बाँधे खड़े रहते हैं। उनसे वह मनमाना काम लेता है। आग और पानी को उसने रेल के एञ्जिन में जोत दिया है। बिजली को उसने रात को दिन बनाने और दुनिया

भर के तमाम कल-कारख़ानों को दिन-रात चलाते रहने का हुकुम दे रक्खा है। किसी में हिम्मत नहीं जो उसे टाले। उसकी बुद्धि के आगे सब ने हार मान रक्खी है।

मानव-समाज का विकास—मनुष्य ने अपनी बुद्धि का इतना विकास कहाँ से किया? अपनी इतनी उन्नति उसने कैसे की?

इस विषय में कई बातों ने उसे सहायता पहुँचायी।

सब से पहली और ख़ास बात तो यह है कि मनुष्य शुरू से ही इस दुनिया में मिलजुल कर गिरोह बनाकर रहता आया है। यदि उसे गिरोह बनाकर रहने की आदत न होती तो वह अपनी इतनी उन्नति कदापि न कर पाता। यह तुम स्वयम ही देख सकते हो। मनुष्य एक दूसरे के संसर्ग से ही कुछ सीख सकता है। छोटे बालक माता-पिता के संसर्ग से ही अपने ज्ञान की वृद्धि करते हैं। यदि किसी बालक को जन्म से ही ऐसी जगह बन्द कर दिया जाय जहाँ उसे किसी आदमी की बोली ही सुनने को न मिले तो कहाँ से वह बोलना सीखेगा और कहाँ से ही सांसारिक ज्ञान की वृद्धि करेगा? माता-पिता की गोद ही उसकी पाठशाला है, जहाँ वह पानी को पप्पा और माँ को अम्माँ कहना सीखना शुरू करता है।

गिरोह में रहकर ही मनुष्य ने अपने ज्ञान का इतना विकास किया है।

गिरोह बनाकर रहने की आदत कुछ तो मनुष्य में स्वाभाविक है और कुछ उसे जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मिल-जुलकर रहने के लिए मजबूर होना पड़ा।

शुरू में मनुष्य बड़े गिरोह बनाकर नहीं रहता था। बल्कि कुटुम्ब बना कर रहता था। कुटुम्ब भी एक गिरोह है। कुटुम्ब बहुत पुरानी चीज़ है। पृथिवी पर जब मनुष्य बना तब उसके साथ कुटुम्ब भी बना।

परिवार की सृष्टि—मनुष्य को अपना एक साथी चाहिए। वह साथी स्त्री है। सृष्टि के आदि काल से ही स्त्री और पुरुष एक साथ रहते आये हैं। प्रकृति की यह मंशा है कि वे एक साथ रहें। यदि ऐसा न हो तो जीवों की वृद्धि कैसे हो? जीव-वृद्धि के लिए स्त्री और पुरुष की आवश्यकता है। इसलिए प्रकृति ने उनके मन में स्वभाव से ही एक ऐसी आकांक्षा पैदा कर दी है जिसके वश होकर वे एक दूसरे की कामना करते हैं, और सदैव एक दूसरे के साथ रहना चाहते हैं।

स्त्री और पुरुष का पारस्परिक प्रेम जिस प्रकार स्वाभाविक है, उसी प्रकार उनका सन्तान-प्रेम भी है।

मनुष्य स्वभाव से ही अपनी सन्तान को प्यार करता है। उनके सुख-दुःख की परवाह करता है। यदि ऐसा न हो तो सन्तान के लिए अपनी रक्षा करना कठिन हो-जाय।

तुम स्वयम् जानते हो कि हाल का पैदा हुआ बालक अपने आप कुछ नहीं कर सकता। हर मामले में उसे अपने माता-पिता पर ही निर्भर रहना पड़ता है। जन्म से ही उसे माँ के दूध की आवश्यकता होती है। उसके बाद भी कई वर्ष तक उसे माता-पिता का सहारा चाहिए। जब तक वह बड़ा नहीं हो जाता, माता-पिता उसे अपने पास ही रखते हैं और उसकी देख-भाल करते हैं। अपनी सन्तान के लिए उन्हें ऐसा करना पड़ता है। सन्तान जब तक स्वयम् अपनी देख-भाल करने योग्य नहीं हो जाती तब तक वे उसे अकेला नहीं छोड़ते।

परिवार की सृष्टि यहीं से हुई। तुम कह सकते हो कि जिस दिन से पृथिवी पर मनुष्य का जन्म हुआ उसी दिन से परिवार बन गया।

परन्तु परिवार मनुष्य के पहले भी रहा होगा। क्योंकि पक्षी भी परिवार बनाकर रहते हैं। सन्तान-पालन का गुण उनमें भी है। वे भी अपनी सन्तान को प्यार करते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में तुमने अकसर देखा होगा कि चिरैया और चिरौटा कमरे की छत के किसी कोने में, दीवार से टँगी हुई किसी तसवीर के पीछे, या किसी ऊँचे ताक में बड़ी तेज़ी से घोंसला बनाने में लगे हैं। इसकी वजह है कि चिरैया दो एक दिन में अंडे देगी। उसके लिए ही यह तैयारी है। चिरैया और

चिरौटा दिन-रात मेहनत कर रहे हैं। उसके बाद चिरैया अंडे देती है। उन्हें सेती है। उस वक्त अंडों की रखवाली के लिए चिरैया या चिरौटा में से एक अवश्य घोंसले के पास रहता है। चिरैया यदि दाना चुगने जाती है तो चिरौटा अंडों की रखवाली करता है। यदि चिरौटा जाता है तो चिरैया रखवाली करती है।

उसके बाद बच्चे होते हैं। चिरैया और चिरौटा दोनों उनका पालन-पोषण करते हैं। उनके चुगने के लिए दाना लाते हैं। और जब तक वे उड़ने लायक़ नहीं हो जाते, उन्हें अकेला नहीं छोड़ते। उसके बाद बच्चे उड़ जाते हैं। चिरौटा चला जाता है। चिरैया भी चली जाती है। और चिड़ियों का वह छोटा-सा परिवार नष्ट हो जाता है। परिवार की फिर ज़रूरत नहीं रहती। परन्तु अगले ग्रीष्म में चिरैया जब फिर अंडे देगी तो चिरौटा फिर उसके पास रहेगा। क्योंकि वह जानता है कि चिरैया अकेले सब कुछ नहीं कर सकती। सन्तान-पालन के लिए उसकी सहायता भी आवश्यक है। यह चिड़ियों का परिवार है।

मनुष्य का परिवार आसानी से नष्ट नहीं हो जाता। मनुष्य घर बना कर रहता है और चाहता है कि परिवार के सब लोग हमेशा मिलकर रहें। क्योंकि उससे बड़ा सहारा मिलता है।

———

सातवाँ अध्याय

समाज और व्यक्ति

समाज का जन्म—मनुष्य ने देखा कि परिवार में रहने से ही काम नहीं चलता। उसकी तरह के ही जो दूसरे परिवार हैं, जीवन के क्षेत्र में उनसे भी एक दूसरे को बड़ी मदद मिलती है। एक परिवार में यदि गायें ज्यादा हैं, और अन्न की कमी है, और दूसरे परिवार में यदि अन्न ज्यादा है, और गायों की अधिकता है, तो उन्होंने देखा कि ये चीजें आसानी से बदली जा सकती हैं। एक परिवार अपनी कुछ गायें देकर दूसरे का अन्न ले सकता है। इसके अलावा उन्होंने देखा कि मार-पीट या लूट-खसोट के मौक़े पर भी एक परिवार के आदमियों को दूसरे परिवार से बड़ी मदद मिलती है।

सभ्यता के शुरू के ज़माने में मनुष्य आज-कल की तरह घरों में नहीं रहता था, बल्कि वह जङ्गलों में रहता था। उस वक़्त एक परिवार की दूसरे परिवार के साथ लड़ाई बहुत

स्वाभाविक थी। मनुष्य ने देखा कि ऐसे मौक़े पर वह एक दूसरे की बड़ी मदद कर सकता है। एक परिवार पर यदि कोई विपत्ति आती है तो दूसरा परिवार उसकी सहायता कर सकता है। एक परिवार को यदि कोई कष्ट होता है तो दूसरा उसे कष्ट में सान्त्वना दे सकता है।

सहयोग के इन लाभों से मनुष्य शीघ्र ही परिचित हो गया होगा। उसने देखा होगा कि एक की बजाय यदि कई परिवार मिलकर रहें तो शत्रुओं और जङ्गली जानवरों से अपनी रक्षा करने में, खेती-बारी में, और पशु-पालन में, एक दूसरे को बड़ी मदद मिलती है। इसलिए कई परिवार मिलकर रहने लगे। इससे ही गाँव बने। जिस दिन से गाँव बने, उसी दिन से समाज का विकास हो चला। जिस दिन से समाज का विकास शुरू हुआ, उसी दिन से मनुष्य तेज़ी से अपनी उन्नति करने लगा।

पशु भी समाज में रहना जानते हैं। दल-बद्ध होकर रहने से शक्ति बढ़ती है; जीवन का मार्ग सुगम हो जाता है; एक दूसरे को हर मामले में बड़ी सहायता मिलती है—यह बात पशु-पक्षी भी जानते हैं। हिरन को तुमने अकेला बहुत कम देखा होगा। वह गिरोह में ही रहता है। बन्दर भी संगठित होकर रहते हैं। अकसर देखा गया है कि यदि कभी किसी कुत्ते ने किसी बन्दर पर आक्रमण करने की कोशिश की या उसे नोंचा-खसोटा, तो

दल के सारे बन्दर उस पर टूट पड़ते हैं और उसे मार कर ही छोड़ते हैं।

इस प्रकार का सामाजिक संगठन सभी जानवरों में देखने में आता है। कहा जाता है कि बारहसिंगों का दल जब खेत में चरने को खड़ा होता है तो उनमें से कुछ बारहसिंगे दूर खड़े होकर दल के बाक़ी बारहसिंगों की रखवाली करते हैं और अपनी दुम हिलाकर शत्रु के आने की सूचना देते हैं। यह सचमुच बड़ा विचित्र है। गायों में भी इसी प्रकार का संगठन होता है। कहा जाता है कि जंगल में विचरते हुए गौओं के दल पर शेर यकायक आक्रमण करने की हिम्मत नहीं करता।

क्या तुमने चीटियों के सम्बन्ध में कुछ पढ़ा है? उनके समाज की रचना देखकर बुद्धि हैरान हो जाती है। इसी तरह मधुमक्खी की समाज-रचना भी बड़ी विचित्र है।

परन्तु जिसे हम बुद्धि कहते हैं, पशु-पक्षी या कीड़े-मकोड़ों में वह नहीं होती। वे अपनी बुद्धि से काम लेना नहीं जानते। वे जो कुछ करते हैं स्वभाव के वशीभूत होकर करते हैं। मछली जन्म से ही तैरना जानती है। उसे तैरना सीखना नहीं पड़ता। इन जीवधारियों में यदि बुद्धि होती भी है, तो बहुत कम। वे जो कुछ करते हैं अभ्यास के वश होकर ही करते हैं। अपनी

बुद्धि से काम लेना वे नहीं जानते। और न वे उसका विकास ही कर सकते हैं। चींटी जो कुछ जानती है उससे अधिक नहीं जान सकती। वह जो कुछ करती है, उससे अधिक करना नहीं सीख सकती। जन्म से वह जैसा घर बनाना जानती है वैसा ही घर वह बना सकती है, वैसा ही घर वह बनाती है। उससे अच्छा या बुरा, बड़ा या छोटा घर बनाना वह नहीं जानती; और न बनाना सीख सकती है।

मनुष्य की विशेषता—मनुष्य इससे बिलकुल विपरीत है। मनुष्य का बालक जन्म से बिलकुल अबोध होता है। उसे संसार की किसी बात का ज्ञान नहीं होता। यहाँ तक कि माँ के स्तन से उसे दूध पीना भी सीखना पड़ता है। परन्तु अभ्यास से वह सब सीख लेता है। वह मछली की तरह तैरना भी सीख सकता है और चींटी के घरों की तरह बारीक घर भी बना सकता है। वह अपनी बुद्धि का मनमाना विकास कर सकता है और उससे मनमाना काम भी ले सकता है। इससे समाज में रहने का उसे बड़ा लाभ हुआ है।

मनुष्य एक विचारशील प्राणी है—क्योंकि उसमें विचार-शक्ति है इसलिए शुरू से ही उसके मन में इस तरह के प्रश्न उठने लगे—"यह सूरज क्या है? पृथिवी क्या है? चन्द्रमा क्या है? सूरज सुबह कहाँ उगता है? शाम को कहाँ डूब

जाता है? ये तारे रात को आसमान में कहाँ गायब हो जाते हैं?'

और क्योंकि वह बोलना जानता है इसलिए एक आदमी के मन में यदि कोई विचार उठता है तो उसे वह झट से दूसरे पर प्रकट कर देता है। एक आदमी के मन में कोई शंका उठती है तो झट से वह दूसरे से उसका समाधान चाहता है।

मनुष्य ने बोलना कब और कैसे सीखा, यह एक अलग विषय है। परन्तु यह ठीक है कि उसने समाज में रह कर ही बोलना सीखा। और जिस दिन से उसने बोलना सीखा, उसी दिन से वह दर असल मनुष्य बनने लग गया—उसमें मनुष्यत्व का विकास शुरू हो गया।

ज्ञान का विकास—जिस दिन से मनुष्य ने बोलना सीखा, उसी दिन से वह तरह-तरह के प्रश्न करने लग गया। और उनके जवाब भी खोजने लग गया। संसार की अनेक वस्तुओं का ज्ञान उसने इसी प्रकार प्राप्त किया। जब उसके ज्ञान की कुछ वृद्धि हुई तो वह पहले की अपेक्षा कुछ अधिक कठिन सवाल अपने से करने लगा—'मैं क्या हूँ? मुझे किसने बनाया है? यह संसार क्या है? मैं यहाँ क्यों आया हूँ? यहाँ आने का मेरा क्या उद्देश्य है?'

मनुष्य ने इस प्रकार के तमाम प्रश्न अपने आप से किये और उनका जवाब भी खोजा। दुनिया के जितने प्राचीन ग्रन्थ हैं वे सब इसी खोज का परिणाम हैं। मनुष्य के मन में यदि इस तरह के प्रश्न न उठते, उसके मन में यदि ज्ञान की जिज्ञासा न होती तो न वेद होते, न पुराण होते। न बाइबिल होती, न क़ुरान होता। ये सब धर्म-ग्रन्थ मनुष्य की जिज्ञासा के फल हैं।

परन्तु मनुष्य इतने से ही चुप नहीं रहा। जब सामने कोई आदमी होता तब तो वह अपना मनोविचार उस पर प्रकट कर देता। परन्तु दूर के मनुष्य से वह अपनी बात कैसे कहे? कैसे उसके पास अपना सन्देश भेजे? यह एक ऐसी कठिन समस्या थी जिसको हल करने में सम्भव है उसे कई हज़ार वर्ष लग गये हों। आख़िर उसकी समस्या हल हो गयी। उसे लिपि-ज्ञान हुआ। उसने लिपि द्वारा दूसरों पर अपने विचार प्रकट करने शुरू किये। उसके विचार लिपि-बद्ध हो चले।

पहले एक आदमी को यदि कोई नयी बात मालूम होती और यदि वह किसी पर उसे प्रकट न कर पाता, तो वह बात उसके साथ ही क़ब्र में दफ़न हो जाती। दूसरों को उसका पता भी न चलता। परन्तु अब इसका डर नहीं रहा। मनुष्य के मर जाने पर उसका ज्ञान सुरक्षित रहने लगा। मनुष्य को इससे अपनी उन्नति में अद्भुत सहायता मिली। लिपि की वजह से ही आज

संसार का सारा ज्ञान हमारे लिए सुलभ हो गया है। यदि हमें जानना है कि सूरज क्या है, चन्द्रमा क्या है, तारे क्या हैं, तो झट से हम ज्योतिष-शास्त्र की किताब उठा कर पढ़ सकते हैं। यदि लिपि न होती तो आज हमारे ज्ञान का इतना विकास न हुआ होता। कहाँ हम गणित पढ़ते ? कहाँ से ज्योतिष पढ़ते ? कहाँ से दुनिया का और ज्ञान ही प्राप्त करते ?

परन्तु यह सब समाज में रहने की वजह से ही हुआ है। मनुष्य यदि एक दूसरे के सम्पर्क में न आया होता तो ये सारी चीजें सम्भव नहीं थीं। मनुष्य की उन्नति का रहस्य यही है कि वह सृष्टि के प्रारम्भ से ही किसी न किसी प्रकार के समाज में रहता आया है। यदि समाज न होता तो उसमें मानवी गुणों का विकास असम्भव था। समाज ने ही मनुष्य को मनुष्य बनाया।

आठवाँ अध्याय

समाज की उन्नति

समाज की उन्नति—परन्तु क्या तुम बता सकते हो कि समाज को किसने बनाया? समाज की किसने इतनी उन्नति की? इसका जवाब बहुत सीधा है। समाज मनुष्य को लेकर ही बना है। समाज को मनुष्य ही ने बनाया है।

जिस प्रकार समाज के बिना मनुष्य नहीं रह सकता, उसी प्रकार मनुष्य के बिना समाज की रचना भी नहीं हो सकती। समाज ने यदि मनुष्य की उन्नति की, तो मनुष्य के द्वारा भी समाज की उन्नति हुई है। दोनों एक दूसरे की उन्नति के लिए एक दूसरे पर आश्रित हैं। इसे समझने में तुम्हें कोई कठिनाई न होनी चाहिए।

समाज की जो उन्नति हुई है, जो रेल, तार, हवाई जहाज बने हैं, जो सड़कें बनी हैं, शिक्षा और स्वास्थ्य-वृद्धि के जो साधन तैयार हुए हैं—वे सब मनुष्य के प्रयत्न से ही हो रहे हैं। साथ ही

समाज की यह जो उन्नति हो रही है, उससे मनुष्य भी लाभ उठा रहा है। मनुष्य यदि समाज की उन्नति का प्रयत्न करता है तो समाज भी उसकी उन्नति में सहायक होता है। यदि लोगों के सम्मिलित प्रयत्न से किसी समाज में एक स्कूल खुल जाता है तो उससे समाज की उन्नति होती है। और समाज की उन्नति होने से लोगों को फ़ायदा होता है। समाज में पढ़े-लिखे आदमियों की संख्या जितनी अधिक होगी, समाज की उतनी ही उन्नति होगी। और समाज की जितनी ही उन्नति होगी, वहाँ उतने ही अधिक अच्छे और पढ़े-लिखे आदमी पैदा होने लगेंगे। इसलिए तुम यह भी समझ सकते हो कि समाज की अवस्था मनुष्यों के अच्छे और बुरे होने पर ही निर्भर करती है।

मनुष्य जितने श्रेष्ठ होंगे, समाज भी उतना ही श्रेष्ठ होगा। समाज जितना श्रेष्ठ होगा, मनुष्य भी उतने ही श्रेष्ठ होंगे। मनुष्यों का समाज पर असर पड़ता है और समाज का मनुष्यों पर। किसी गाँव में यदि दो-तीन भी जुआरी हों तो सारे समाज पर उसका असर पड़ता है। जुआरियों की संख्या बढ़ने लगती है। उसका नतीजा यह होता है कि समाज ख़राब हो जाता है। उसका असर सब पर पड़ता है। तुमने कहावत सुनी होगी कि 'एक मछली सारे पानी को गँदला कर देती है।' समाज के बारे में यह बात बिलकुल ठीक है।

परन्तु साथ ही गाँव में यदि दो-चार भी शिक्षित और सच्चरित्र व्यक्ति पैदा हो जायँ तो गाँव की दशा बदल सकती है। वे अपने प्रभाव से गाँव का जीवन बदल सकते हैं। वे शिक्षा का प्रचार कर सकते हैं। वे शराबियों की शराब बन्द कर सकते हैं। वे जुआरियों का जुआ छुड़ा सकते हैं। वे लोगों को सफ़ाई से रहना सिखा सकते हैं और उनको नये-नये उद्योग-धन्धे सिखा सकते हैं।

उनके प्रभाव से गाँव की दशा सुधर जायगी। गाँव के लोग पहले से अधिक शिक्षित, अधिक सच्चरित्र और अधिक धनवान हो जायँगे। और उसका नतीजा यह होगा कि आगे गाँव वालों की जो सन्तान होगी वह अच्छे वातावरण में रहेगी—चारों तरफ़ अच्छे और पढ़े लिखे आदमियों से घिरी रहेगी। इसका उसके जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

मनुष्य जैसे समाज में रहता है, उसका रहन-सहन, तौर-तरीक़ वैसा ही हो जाता है। गाँव और शहर के निवासियों में कितना फ़र्क़ होता है! उनका रहन-सहन, बोलचाल, तर्ज़-तरीक़ सब भिन्न होता है। गाँव के स्कूल में तुम मैले कपड़े पहन कर रह सकते हो। परन्तु शहर में आकर तुम देखोगे कि अधिकांश लड़के साफ़-सुथरे कपड़े पहने हुए हैं। तब मजबूर होकर तुम्हें भी अपने कपड़े बदलना पड़ेंगे। क्योंकि साफ़ लड़कों की जमात में

अपने मैले कपड़े तुम्हें खुद बुरे लगेंगे। इसका यह मतलब नहीं कि गाँव के लड़के मैले होते हैं और शहर के साफ़। हमारे कहने का आशय यह है कि वातावरण का मनुष्य के जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिए मनुष्य के सार्वजनिक जीवन को सुधारने के लिए **समाज-सुधार** की आवश्यकता होती है। समाज में यदि कुरीतियाँ हों तो उन्हें दूर करना पड़ता है। साथ ही शिक्षा-प्रचार द्वारा हरएक व्यक्ति के जीवन को उन्नत करने की जरूरत भी होती है।

समाज के नियम—समाज में रह कर मनुष्य को समाज की इच्छा के अनुसार चलना पड़ता है। उसके क़ायदे-क़ानून मानना पड़ते हैं। राज्य की ओर से जैसे क़ानून बनते हैं, वैसे ही समाज की ओर से भी प्रतिबन्ध होते हैं। उदाहरण के लिए जो द्विज है वह शूद्र के हाथ का भोजन नहीं करेगा। यह प्रतिबन्ध है। इसका पालन न करने से समाज दंड देता है। अपराध करने वाला व्यक्ति समाज से अलग कर दिया जाता है।

ये सामाजिक प्रतिबन्ध अच्छे भी होते हैं और बुरे भी, जिस तरह राज्य के क़ानून अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। समाज में रह कर हमें इन प्रतिबन्धों का पालन करना पड़ता है। समाज में रह कर हम यह नहीं करेंगे, वह नहीं करेंगे—इस

प्रकार के निषेध हमें हर घड़ी मानना पड़ते हैं। यदि न मानें तो बड़ी गड़बड़ी फैल जाय।

ये निषेध कई प्रकार के होते हैं, क्योंकि समाज भी कई प्रकार के होते हैं, और उनकी आवश्यकताएँ भी एक दूसरे से भिन्न होती हैं।

सामाजिक रूढ़ियाँ—नियम भी समाज ने ही बनाये हैं। जब जिस नियम की आवश्यकता समाज को जान पड़ी, तब वैसा नियम बन गया। परन्तु ख़राबी यह है कि समाज एक दफ़े नियम बना तो देता है, परन्तु फिर इस बात की परवा नहीं करता कि उस नियम की अब उसे ज़रूरत है भी या नहीं। वह उसे बराबर मानता चला जाता है। बराबर मानते रहने के अभ्यास की वजह से वह उसे हमेशा के लिए सही और लागू मान लेता है। समझता है कि जो नियम बन गया है वह बिलकुल ठीक है। इस तरह के परम्परागत नियमों को, जिनकी एक ज़माने में ज़रूरत थी, परन्तु जो अब बेकार हैं, रूढ़ि कहते हैं। ये रूढ़ियाँ सभी समाजों में मौजूद रहती हैं।

बाल-विवाह एक रूढ़ि है। मालूम नहीं किस वक्त, किस मतलब से, समाज में इस प्रथा का चलन हुआ होगा। परन्तु हिन्दू अब भी उसे मानते चले आ रहे हैं। वे उसे आसानी से छोड़ना नहीं चाहते। एक काम को जब हम बराबर करते रहते

हैं तो उसको सही मान लेते हैं। परन्तु यह ग़लती । हमेशा से एक काम होता आया है, इसलिए वह ठीक है, इस तरह का मोह अच्छा नहीं होता। उससे समाज़ को हानि होती है। इसलिए इस प्रकार की सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने की ज़रूरत होती है।

हम इस समाज में ज़रूर रहते हैं। हम चारों तरफ़ उसके नियमों से ज़रूर बँधे हैं। परन्तु हम सामाजिक रूढ़ियों के अन्ध दास नहीं बनेंगे। आँख मूँद कर उनका पालन नहीं करेंगे। हम अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते हैं। समाज इसको लेकर हो बना है। समाज की सृष्टि हमने ही की है। हम चाहें तो समाज की काया पलट सकते हैं। उसके बुरे नियमों को एकदम बदल सकते हैं। परन्तु इसके लिए बड़ी शक्ति चाहिए। बड़ा बल चाहिए। क्योंकि समाज की परम्परा को बदलना आसान नहीं है। जब कभी ऐसा मौक़ा आता है, जब कभी समाज की रूढ़ियों को तोड़ने का यत्न किया जाता है, हमेशा गड़बड़ी फैलती है, क्योंकि समाज के दूसरे लोग परिवर्त्तन का विरोध करते हैं। जो आदमी सुधार करना चाहता है, उसमें और समाज में लड़ाई छिड़ जाती है। और यदि उस मनुष्य में शक्ति हुई तो समाज को हार माननी पड़ती है। वह अपनी ग़लती महसूस करता है और बुरे नियम नष्ट हो जाते हैं।

हमारे हिन्दू-समाज में इस प्रकार के परिवर्त्तन के कई मौक़े आये, जब समाज-सुधारकों और समाज में रहने वाले पुराने विचार के आदमियों में ख़ासी लड़ाई छिड़ी। अकसर समाज को ग़लती माननी पड़ी। और समाज-सुधारकों की जीत हुई।

समाज में सुधार करने और पुरानी रूढ़ियों और रीति-रिवाजों को बदलने की इस चेष्टा को सामाजिक क्रान्ति कहते हैं और राज्य की व्यवस्था में सुधार करने और उसके हानिकारी क़ायदे-क़ानूनों को बदलने की चेष्टा को राजनैतिक क्रान्ति। क्रान्ति को उर्दू में 'इनक़िलाब' कहते हैं।

समाज में कुरीतियाँ जब बहुत फैल जाती हैं तब हमेशा सामाजिक क्रान्ति की ज़रूरत होती है और राज्य में जब अव्यवस्था बढ़ती है तब राजनैतिक क्रान्ति की ज़रूरत होती है।

———

नवाँ अध्याय

समाज का उद्देश्य

हम समाज की व्यापक चर्चा कर चुके हैं, उस मानव-समाज की जो पृथिवी के धरातल पर चारों ओर फैला है। वह समाज किसी एक आदमी का नहीं है। किसी एक धर्म का उस पर क़ब्ज़ा नहीं है। बल्कि संसार की सभी जातियाँ और धर्म उसमें शामिल हैं। वह इन सब को लेकर बना है। वह इन सब का संगठित रूप है।

परन्तु रोज़ बोल-चाल में जब हम समाज का नाम लेते हैं, तब एक संकुचित अर्थ में इस शब्द का प्रयोग करते हैं। मानव-समाज के इस बड़े रूप से हमारा मतलब नहीं होता। समाज कहने से झट हम उन लोगों के समाज का ध्यान करते हैं जिनमें हम दिन-रात रहते हैं, जिनको हम जानते हैं, जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध है, और जिनसे अक्सर हमें काम पड़ता रहता है। समाज से हमारा मतलब इन्हीं लोगों के समाज से होता है।

यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि भूगोल की बजाय हम अपने देश से ज़्यादा परिचित हैं। देश की बजाय अपने प्रान्त से ज़्यादा परिचित हैं। प्रान्त की बजाय अपने गाँव से ज़्यादा परिचित हैं। गाँव की बजाय उन लोगों से ज़्यादा परिचित हैं, जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध होता है, या जो हमारे निजी दल के हैं।

इसका यह मतलब नहीं कि एक गाँव का दूसरे गाँव से, एक प्रान्त का दूसरे प्रान्त से, एक देश का दूसरे देश से कोई मतलब ही न हो। फ़र्क़ केवल इतना है कि गाँव के लोगों से हमें रोज़ काम पड़ता है, परन्तु बाहर के लोगों से एकाध दिन ही। फिर भी यदि तुम ध्यान से देखो तो इन बाहर के लोगों से भी हमारा घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। हम उनके लिए और वे हमारे लिए कुछ न कुछ करते रहते हैं। हम यदि किसी के लिए अनाज पैदा करते हैं तो दूसरे हमारे लिए कपड़ा बुनते हैं। यह दूसरी बात है कि गाँव का हम ज़्यादा ख़्याल करें, और गाँव के बाहर के लोगों का कम। परन्तु ख़्याल किये बिना काम नहीं चल सकता। क्योंकि एक गाँव दूसरे गाँव से, एक प्रान्त दूसरे प्रान्त से, एक देश दूसरे देश से जंजीर की कड़ी की तरह बँधा हुआ है।

समाज की भी ठीक यही दशा है। हम सम्पूर्ण मानव-समाज का ख़्याल बहुत कम करते हैं। क्योंकि प्रत्यक्ष में उससे हमें ज़्यादा काम नहीं पड़ता। हम जिन लोगों में रहते हैं, जिनसे

हमारा कोई सम्बन्ध है या जो हमारी विरादरी के हैं, उनको ही अपना समाज समझते हैं। समाज के प्रति अपनी यह संकुचित भावना हमें छोड़नी चाहिए। उससे सच्ची समाज-सेवा में वाधा पड़ती है।

समाज छोटा हो या वड़ा, सव एक है। जितने भी समाज हैं, जितने भी धर्म हैं, जितने भी मत-मतान्तर हैं, जितनी भी जातियाँ हैं, सब मानव-समाज के अंग हैं। सब का एक उद्देश्य है। वह है सामूहिक रूप से मानव-समाज की उन्नति और सेवा करना। शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों का भी तो यही उद्देश्य रहता है। हर एक अपना-अपना काम करता है। हाथ अपना काम करते हैं। आँख अपना काम करती है। कान अपना काम करते हैं। हृदय अपना काम करता है। सव चुपचाप अपने-अपने काम में लगे रहते हैं। कोई किसी के खिलाफ़ नहीं जा सकता। सब को एक दूसरे की सहायता करनी पड़ती है। साथ ही अपनी चिन्ता भी करनी पड़ती है। हाथ-पैर यदि किसी दिन काम करने से इनकार कर दें तो सारे शरीर की मशीन ही वन्द हो जाय।

इसलिए समाज शब्द के व्यवहार में हमें गड़वड़ो नहीं करनी चाहिए। उसका संकुचित अर्थ हमें नहीं लगाना चाहिए। समाज का मतलब अपना समाज ही नहीं होता। केवल अपने समाज की सेवा करके हम सच्ची समाज-सेवा नहीं कर सकते।

अपने समाज की चिन्ता हमें इसलिए करनी पड़ती है कि हम सब उसके अंग हैं। हम सब को लेकर ही वह बना है। उसके प्रति यदि हम अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करेंगे तो उससे मानव-समाज का अहित होगा। इसलिए हमें अपने समाज का सबसे पहले ख्याल करना पड़ता है, और प्रति क्षण उसकी उन्नति का प्रयत्न करना होता है।

साथ ही समाज के जो दूसरे अंग हैं, हमारे जो दूसरे साथी हैं, हमारी तरह के जो दूसरे समुदाय हैं, उनकी भी हमें परवा करनी पड़ती है। हम उनसे लड़ने का ख्याल तो कर ही नहीं सकते। हमारे शरीर का एक अंग दूसरे अंग से झगड़ा करे तो बड़ी दिक़्क़त हो जाय। वह झगड़ा तो कभी करता ही नहीं, बल्कि अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए भरसक एक दूसरे को मदद पहुँचाता रहता है।

यही बात समाज में भी है। मानव-समाज का एक अंग यदि दूसरे को बुरा कहे, एक अंग यदि दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखे, एक अंग बात-बात पर दूसरे से लड़ने को तैयार हो जाय, तो कैसे काम चलेगा? मानव-समाज की उससे कैसे उन्नति होगी?

इसलिए हम समाज की उन्नति का प्रयत्न तो करेंगे, परन्तु उसका झूठा मोह नहीं करेंगे। हम यह नहीं कहेंगे कि यह मेरी जाति है। यह मेरा समाज है। ऐसा कहने से हममें संकीर्णता

आ जाती है। हम अपने समाज को ही सब कुछ समझने लगते हैं और उसको ही अपनाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु जिसे हम अपनी जाति या समाज समझते हैं वह तो एक साधन-मात्र है जिससे हम अपनी सार्वजनिक उन्नति करते हैं।

हमें अपने को किसी समाज से बाँधना नहीं चाहिए। मनुष्य-मात्र की सेवा ही हमारा धर्म होना चाहिए। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या ईसाई, क्या सिक्ख, सबको हमारी सेवा की ज़रूरत है। सब हमारे भाई हैं। यदि हम अपनी ही फ़िक्र करेंगे और उनकी सेवा का ख्याल नहीं करेंगे तो इसका मतलब यह है कि हम स्वार्थी हैं।

तुम देखते होगे कि देश में अनेक प्रकार की सभाएँ बनी हैं। ब्राह्मण सभा, वैश्य सभा, मुसलिम लीग—इस प्रकार की तमाम सभाएँ हैं। हर साल इन सभाओं में जलसे होते हैं। व्याख्यान होते हैं। उपदेश होते हैं। हरेक सभा अपनी तारीफ़ करती है। अपने को ही सब कुछ समझती है। जब आदमी अपनी प्रशंसा करता है तो उसका अर्थ यह होता है कि वह दूसरे को कुछ नहीं समझता। वह भूल जाता है कि यदि और मनुष्य न हों तो उसका ही अस्तित्व कैसे हो!

इन सब सभाओं का उद्देश्य जाति विशेष की कुरीतियों को दूर करना होता है। विवाह में इतना दहेज देना चाहिए।

इतना नहीं देना चाहिए। यह काम करना चाहिए। यह नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार की तमाम बातें इन सभाओं में तय होती हैं। लोग इसे समाज-सुधार कहते हैं। परन्तु यह क्या वास्तव में समाज-सुधार है? इस प्रकार के सामाजिक कार्यों से तो एक ख़ास फ़िरक़े के लोगों को ही कुछ लाभ पहुँच सकता है। आम जनता को उससे कोई लाभ नहीं पहुँचता।

इसलिए इन कामों को समाज-सेवा नहीं कहा जा सकता। समाज का अर्थ जाति नहीं है। समाज में तो सभी शामिल हैं। शिक्षा का प्रचार करना, दीन-दुखियों की सेवा करना, पराये कष्टों को दूर करने का यत्न करना—यही सच्ची समाज-सेवा है। इन कामों को ही हम सामाजिक कार्य कह सकते हैं।

नागरिक जीवन सामाजिक जीवन का एक अंग है। नागरिक के कर्तव्यों का पालन करके हम सामाजिक जीवन की उन्नति में सहायक होते हैं। मिल-जुल कर रहना, सब को अपना भाई समझना, किसी के धर्म की बुराई न करना, हमेशा दूसरों की सुविधा का ख्याल रखना—समाज के प्रत्येक क्षेत्र में नागरिक को इस प्रकार के कर्त्तव्य पालन करने की जरूरत पड़ती है। वह किसी एक जाति या धर्म से मतलब नहीं रखता, बल्कि सारे मनुष्य-समाज को अपना समझता है।

———

दसवाँ अध्याय

सहयोग की आवश्यकता

हम एक दूसरे की सहायता के बिना नहीं रह सकते। मान लो तुम एक ऐसे जंगल में छोड़ दिये जाओ जहाँ कोई भी न रहता हो; जहाँ कोई चीज़ न मिलती हो। तो तुम वहाँ क्या करोगे? जिस वस्तु की तुम्हें आवश्यकता होगी उसके लिए स्वयम् प्रयत्न करना पड़ेगा। समाज में रह कर भी हमें काम करना पड़ता है। जब तक हम काम न करें हमें भोजन नहीं मिल सकता। परन्तु जंगल में रह कर भी तुम सब काम नहीं कर सकते। जीवन की अत्यन्त साधारण आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए भी हमें दूसरों का सहयोग चाहिए। वास्तव में मिल-जुल कर रहने के हम इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि हमारे ध्यान में कभी यह बात नहीं आती कि हमें अकेला रहना पड़े तो क्या हो?

क्या तुमने कभी सोचा है कि हम नित्य जो भोजन करते हैं उसके उत्पन्न करने में कितने मनुष्यों का हाथ है? उसमें कितने

मज़दूरों का परिश्रम सम्मिलित है? कितने व्यक्तियों की सेवा का वह फल है? किसान अन्न पैदा करता है। परन्तु ज़मीन जोतने के लिए उसे हल चाहिए। हल बनाने के लिए बढ़ई चाहिए। बढ़ई को औज़ार चाहिए। औज़ार बनाने के लिए लोहा चाहिए। लोहा बनाने के लिए बड़े-बड़े कारख़ाने चाहिए। उन कारखानों के लिए कोयला चाहिए। कोयले की खानों में काम करने के लिए मज़दूर चाहिए। इस तरह एक साधारण हल के बनने में कितने आदमियों का परिश्रम सम्मिलित है इसका कुछ ठीक नहीं।

परन्तु हमारी कठिनाई यहीं समाप्त नहीं हो जाती। किसी ने ज़मीन जोती। अन्न पैदा किया। अन्न बाज़ार में बिकने आया। ख़रीदा गया। इसके बाद पीस-छान कर उसकी रोटी बनायी गयी। अब मान लो किसी वजह से कोयले की आमद बन्द हो जाय। कोयला यदि नहीं मिलेगा तो मशीनों के लिए लोहे की कमी हो जायगी, क्योंकि मशीनें लोहे से बनती हैं और लोहा कोयले की सहायता से खान से निकलता है। लोहे की जब कमी हो जायगी तो उसके दाम भी बढ़ जायंगे। लोहे के दाम बढ़ने से रेल का किराया भी बढ़ जायगा। रेल का किराया बढ़ने से बाज़ार की चीज़ें महँगी हो जायँगी। बाज़ार की चीज़ों के महँगे होने से मज़दूरी बढ़ जायगी, और मज़दूरी जब बढ़ जायगी तो

तुम समझ सकते हो कि बाजार में गल्ले का भाव भी बढ़ जायगा। गल्ला पैदा करने में जितने आदमियों ने सहायता पहुँचायी है उनमें से यदि कोई एक व्यक्ति भी ईमानदारी से अपना काम न करे तो उससे सारे व्यक्तियों को असुविधा हो सकती है। लुहार, बढ़ई, मजदूर, कारखानों के कर्मचारी, इनमें से कोई एक दल यदि काम करना छोड़ दे तो समाज का सारा कारोबार ही बन्द हो जाय। इससे सब का कितना नुक़सान होगा इसकी कल्पना तुम सहज में ही कर सकते हो।

समाज में रह कर सब एक दूसरे के लिए काम करते हैं। सब एक दूसरे की सहायता करते हैं और सुख-दुःख में एक दूसरे के काम आते हैं। समाज में रहने का यही उद्देश्य है। यदि हममें से एक भी ईमानदारी से अपना काम नहीं करता तो उससे सबका ही नुक़सान होता है। सबका नुक़सान हमारा नुक़सान है। सबका लाभ हमारा लाभ है। यह सब से पहला पाठ है जो हम सामाजिक जीवन से सीखते हैं। मानव समाज एक जंजीर की तरह है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति उस जंजीर की कड़ी है। जंजीर की एक कड़ी टूटने से सारे समाज का नुक़सान हो सकता है।

तुमने क्या वह कहानी सुनी है जिसमें एक साधारण-सी कील के निकल जाने की वजह से सारे देश का नुक़सान हो गया

था। एक सिपाही घोड़े पर सवार होकर युद्ध-क्षेत्र पर जा रहा था। वह सेना का कप्तान था। रास्ते में दुर्भाग्य से उसके घोड़े की नाल निकल गयी, जिसकी वजह से घोड़ा लँगड़ाने लगा। आस-पास के गाँवों में उसने नालबन्द की बहुत तलाश की; परन्तु कोई ऐसा आदमी नहीं मिला जो घोड़े की नाल बाँध सकता। इसका परिणाम यह हुआ कि वह समय पर युद्ध-क्षेत्र में नहीं पहुँच सका और उसकी सेना हार गयी। कील के निकल जाने की वजह से नाल निकल गयी। नाल के निकलने से घोड़ा लँगड़ाने लगा। घोड़े के लँगड़ाने की वजह से सिपाही युद्ध-क्षेत्र में नहीं पहुँच सका। सिपाही के युद्ध-क्षेत्र में न पहुँच सकने की वजह से सेना हार गयी। सेना के हारने की वजह से एक देश का देश पराधीन हो गया। यह सब एक कील की वजह से हुआ।

ठीक इसी प्रकार समाज में भी एक साधारण व्यक्ति की कर्त्तव्यहीनता से सारे समाज का अपकार हो सकता है। हमारे प्रत्येक अच्छे या बुरे कर्म का सारे समाज पर प्रभाव पड़ता है। और अन्त में उस अच्छे या बुरे कर्म का फल हमें ही भोगना पड़ता है।

स्वार्थ और परार्थ—हम जो काम करते हैं उनमें से कुछ तो अपने लिए करते हैं, कुछ दूसरों के लिए। हमें रोटी चाहिए। कपड़ा चाहिए। रहने के लिए अच्छा घर चाहिए। इन सब

चीज़ों के प्राप्त करने के लिए हमें परिश्रम करना पड़ता है। यदि हम परिश्रम न करें तो हमें रोटी नहीं मिल सकती। रोटी के लिए हमें मेहनत करनी पड़ती है। यह दूसरी बात है कि किसी के पास बहुत पैसा हो और वह आराम से बैठा हुआ खाता रहे। परन्तु ऐसे आलसी मनुष्यों के लिए समाज में कोई स्थान नहीं है। जो लोग दूसरों की कमाई पर निर्भर करते हैं, अथवा मुफ़्त का बैठे खाते हैं, समाज में ऐसे व्यक्तियों को अच्छी नज़र से नहीं देखा जाता। क्योंकि समाज का उनसे कोई उपकार नहीं होता। वे किसी के लिए कुछ करते नहीं। दूसरों की सम्पत्ति पर मौज उड़ाते हैं।

परन्तु फिर भी रोटी की फ़िक्र सब को रहती है। जीवित रहने के लिए भोजन चाहिए। जीवित रहना मनुष्य की सब से बड़ी आकांक्षा है। संसार में कोई जल्दी नहीं मरना चाहता। सब कोई सुखपूर्वक जीवित रहना चाहते हैं। सब कोई सुख चाहता है। दुःखी कोई नहीं रहना चाहता। सुख-प्राप्ति के लिए हमें परिश्रम करना पड़ता है। बिना परिश्रम के सुख नहीं मिलता। साथ ही अपने परिवार को भी हम सुखी देखना चाहते हैं। हमारी सन्तान है। हमारी स्त्री है। हमारे भाई-बहन हैं। इन सब को हम सुखी देखना चाहते हैं। इसके लिए हम पढ़ते-लिखते हैं। नौकरी करते हैं। मेहनत-मजदूरी करते हैं। पैसा कमाने की फिक्र करते हैं। यह सब हम अपने या अपने परिवार के लिए करते हैं।

परन्तु कुछ काम ऐसे भी हैं जो हमें दूसरों के लिए भी करने पड़ते हैं। हम अपनी फ़िक्र कर के ही जीवित नहीं रह सकते। हमें दूसरों की भी फ़िक्र करनी पड़ती है। हम केवल अपने को लेकर सुखपूर्वक नहीं रह सकते। अकसर दूसरों के साथ बैठकर गप लगाने को जी चाहता है। उनके साथ हँसने और खेलने की इच्छा होती है। कभी-कभी अपने इन साथियों को सुख-दुःख की बात सुनाने का भी जी होता है। उन्हें हम अपना समझना चाहते हैं। उन्हें अपना मित्र बनाने की इच्छा होती है—ऐसा मित्र जिससे हम घुल कर बात कर सकें, जिसके लिए हम सब कुछ करने को तैयार रहें, और जो हमारे लिए सब कुछ दे सके। क्या तुम्हारा कोई ऐसा मित्र है जिसे ज़रूरत पड़ने पर तुम दावात, क़लम और स्याही उधार देते होओ? जिसके लिए तुम दूसरों से लड़ने के लिए तैयार रहते हो, और जो तुम्हारे लिए भी अपने को सङ्कट में डालने की परवा न करता हो? हम समझते हैं अवश्य होगा।

अपने साथ अपने मित्रों को भी हम सुखी देखना चाहते हैं। अपने परिवार के लिए हम जो करते हैं, वही अपने मित्रों के लिए भी करने को तैयार रहते हैं। इससे हमें सुख मिलता है। यह सुख उस सुख से बहुत ऊँचा है जो हमें अपने हित के लिए काम करने में प्राप्त होता है। अपने लिए काम करना स्वार्थ के

लिए काम करना कहलाता है। दूसरों के हित के लिए काम करना परार्थ के लिए काम करना कहलाता है। परार्थ के लिए काम करने से जो सुख मिलता है वह उस सुख से ऊँचा है जो स्वार्थ के लिए किये गये काम से प्राप्त होता है। हम अपने लिए कष्ट उठाते हैं। परन्तु दूसरों के लिए भी कष्ट उठाने में एक आनन्द है। हम अपने लिए काम करते हैं। परन्तु दूसरों के लिए काम करने में भी एक सुख है।

स्कूल में तुम फुटबाल खेलते हो। यह तुम अपने लिए खेलते हो। परन्तु स्कूल के लिए मैच खेलने में कुछ बात ही और है। मैच तुम इसलिए होशियारी से खेलते हो कि तुम्हारा स्कूल जीते। तुम अपने स्कूल के लिए खेलते हो। खेल में तुम अपनी जान लगा देते हो और इस बात को परवा नहीं करते कि तुम्हारा हाथ-पैर टूटेगा या बचेगा। और जीतने पर तुम्हें कितनी खुशी होती है! यह क्यों? इसलिए कि तुम्हारा स्कूल जीत गया। उस जीत में तुम्हारा भी थोड़ा हिस्सा है। यदि तुम अच्छी तरह न खेलते तो सम्भव है स्कूल हार जाता। उस समय ज़रूर तुम्हें रंज होता। परन्तु तुम इतना अच्छी तरह से खेले कि स्कूल की जीत हुई। स्कूल की जीत होने से तुम्हारी भी ख्याति हुई। उससे तुम्हें सुख मिला।

इस प्रकार अपने लिए काम करने में तो सुख मिलता ही है, परन्तु दूसरों के लिए काम करने में उससे अधिक सुख मिलता

है। अपनी सेवा में आनन्द आता है। हम अच्छे कपड़े पहनते हैं। अच्छा भोजन करते हैं। अच्छे मकान में रहते हैं। इन सब कामों से हमें सुख मिलता है। परन्तु दूसरे की सेवा भी तो कोई चीज़ है। हमें जो सुख मिलता है उसे हम दूसरे को क्यों न पहुँचायें? अपने को सुखी रखना ही हमारा धर्म नहीं है। दूसरे को सुख पहुँचाना भी हमारा कर्त्तव्य है। सच्चा सुख हमें तभी मिलता है। हमें सदैव अपने परिवार के लिए, अपने मित्रों के लिए, अपने स्कूल के लिए, अपने गाँव के लिए कुछ करते रहना चाहिए।

हम अपने मित्रों के लिए ही सुख को कामना क्यों करें? हम उनकी ही सेवा क्यों करें जिन्हें हम जानते हैं? मनुष्य-मात्र के लिए हम सुख की कामना क्यों न करें। फिर चाहे वह हमारा भाई हो, चाहे मित्र हो, चाहे पड़ोसी हो, चाहे ब्राह्मण हो, चाहे ईसाई हो, चाहे भंगी हो। हमारे सब पड़ोसी हैं। सब मनुष्य हैं। सब एक ही ईश्वर के बनाये हुए हैं। गाँव और ज़िला, क़स्बा और नगर, प्रान्त और देश, ब्राह्मण और वैश्य, भंगी और चमार, यह सब भेद तो हमने अपनी सुविधा के लिए किया है। सब एक देश के निवासी हैं। सब एक समाज में रहते हैं। किसी को ब्राह्मण, किसी को वैश्य, किसी को भंगी, किसी को मुसलमान, किसी को ग़रीब किसी को निर्धन समझना भूल है। सब

एक दूसरे की मदद करने के लिए हैं। सब एक नाव में बैठे हैं। सब के हाथ में पतवार है जो सबको खेने में मदद करती है। सबको नाव आगे बढ़ानी है। यदि कोई लापरवाही करे, नाव खेने में सबकी मदद न करे तो नाव आगे कैसे बढ़ेगी? इसी तरह अपने देश के भीतर यदि हम सब मिल-जुलकर न रहें, एक दूसरे की सेवा न करें, किसी को ग़रीब और किसी को अमीर समझें, और देशहित के कार्यों में एक दूसरे की मदद न करें, तो हमारे देश की उन्नति कैसे हो सकती है? हम सब जीवन-पथ पर आगे कैसे बढ़ सकते हैं?

ग्यारहवाँ अध्याय

जीवन के मार्ग पर

हम सब एक ही पथ के पथिक हैं। जीवन के मार्ग पर हम सब एक साथ चले जा रहे हैं। हमारे साथ न जाने कितने मनुष्य हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सब हमारे साथ चल रहे हैं। सब का एक ही उद्देश्य है। वह उद्देश्य है आत्मोन्नति। और साधन है एक दूसरे की सेवा। एक दूसरे की सहायता। एक दूसरे का सहयोग।

रास्ते में हमें सब की सुविधा देखकर चलना पड़ता है। और अवसर पर एक दूसरे की सहायता करनी पड़ती है।

बड़े शहरों की सड़कों पर अकसर लिखा रहता है, 'बाईं ओर चलो।' यह एक नियम है, सार्वजनिक सुविधा के लिए जिसकी रचना की गयी है। इस नियम का यदि हम पालन न करें तो हमें कोई दंड नहीं देता। क़ानून की किताब में भी यह नियम नहीं है। परन्तु फिर भी हमें उसे मानकर चलना पड़ता है।

सार्वजनिक सुविधा के लिए यह सड़क पर बाईं ओर हट कर चलने का क़ानून ऐसा ही क़ानून है। सार्वजनिक सुविधा के ख्याल से यह तय कर दिया गया है कि हम सड़क पर हमेशा बाईं ओर बचकर चलेंगे। क्योंकि सड़क पर चलने का यदि ऐसा कोई नियम न हो तो फिर बड़ी दिक़्क़त पड़ जाय। इसीलिए सड़क पर हम दूसरे को मार्ग देकर चलते हैं। दूसरों की सुविधा के लिए हमें थोड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। दूसरे भी हमारे लिए ऐसा करते हैं। सड़क पर बाईं ओर हट कर चलने का यह नियम बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यदि हम दाहिनी ओर चलें तो हमें कोई दंड नहीं देता। परन्तु फिर भी हमने आपस में यह तय कर लिया है कि हम एक दूसरे को मार्ग देकर चलेंगे। जीवन के मार्ग में एक दूसरे की सुविधा के लिए थोड़ा कष्ट उठायेंगे। सड़क पर चलने का यह नियम जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू होता है। दूसरों की सुविधा के लिए सदैव थोड़ा कष्ट उठाने की जरूरत होती है। यदि हम ऐसा न करें तो जीवन के मार्ग पर हम आगे बढ़ नहीं सकते।

रेल में लिखा रहता है 'थूको नहीं।' क्योंकि थूकने से बीमारी फैलती है। दूसरों को उससे असुविधा होती है। रेल में जो दूसरे मुसाफ़िर बैठे रहते हैं उनके मन में उससे ग्लानि पैदा होती है। इसलिए बाहर थूकने में यदि हमें दिक़्क़त भी हो तो

सी हम बाहर ही थूकेंगे। इसलिए कि दूसरों को कष्ट न हो। जरा ख्याल करो। सभी लोग रेल में थूकने लगें तो क्या हो? रेल अकेले हमारे बैठने के लिए नहीं है। वह सब के लिए है। उसे हम अपना घर कैसे बना लेंगे?

और फिर हम अपने घर में भी तो कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकते जिससे दूसरों को असुविधा हो। उदाहरण के लिए हम अपने घर में बारूद का खेल नहीं कर सकते। क्योंकि उससे हमारा मकान तो जलेगा ही, दूसरों के घरों में भी आग लग सकती है। और बारूद रखना राजकीय जुर्म है। उसके लिए राज्य की ओर से दंड मिल सकता है।

परन्तु घर में भी हमें सड़क पर के नियम का पालन करना पड़ता है। दूसरों के लिए मार्ग देकर चलने का क़ानून सब जगह लागू होता है। हम ऐसा न करें तो रहना मुश्किल हो जाय।

हम अपने घर में सितार बजा सकते हैं। परन्तु कनस्टर बजाकर दूसरों के कान नहीं फोड़ सकते। यदि सभी यह दावा कर के कि 'घर हमारा है', 'अपने घर में हम चाहे जो कुछ करेंगे', कनस्टर बजाने पर आमादा हो जांय तो तुम सोच सकते हो कैसी मुसीबत आ जाय। इसलिए अपने घर में भी हम कोई ऐसा काम नहीं करेंगे जिससे दूसरों को असुविधा हो।

हमें अपने घर को गन्दा रखने तक का अधिकार नहीं। क्योंकि अपने घर को यदि हम गन्दा रक्खेंगे तो उससे बीमारी फैलेगी। उससे दूसरों का नुक़सान होगा। इसलिए नियम बनाया गया है कि हम अपने घर के सामने कूड़े का ढेर नहीं लगायेंगे। पेशाब नहीं करेंगे। इस तरह की अन्य कोई गन्दगी नहीं फैलायेंगे। मतलब यह कि हम कोई ऐसा काम नहीं करेंगे जिससे दूसरों को असुविधा होने का डर हो।

और तो और, हमें यह अधिकार भी नहीं कि स्वयम् अपने को अथवा अपनी सन्तान को अशिक्षित रक्खें। क्योंकि अशिक्षितों की संख्या बढ़ने से समाज का नुक़सान होता है। इसलिए सभी उन्नत देशों में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होती है। लोगों को मजबूर होकर अपने बच्चे स्कूल में भेजना पड़ते हैं। यदि वे ऐसा न करें तो उन्हें दंड दिया जाता है।

जीवन में दूसरों की सुविधा का ख़्याल रखकर चलने का नियम इतना व्यापक है कि छोटी-छोटी बातों के सम्बन्ध में भी हमें बहुत सतर्क होकर चलने की ज़रूरत है।

सड़क पर चलने का ज्ञान तक तो हमें है नहीं। तुम किसी बड़े शहर में देखो। सारी सड़क तुम्हें राहगीरों से भरी नज़र आयेगी। कोई दायें चलता है, तो कोई बायें। कुछ तो ऐसे होते हैं जो सड़क को बिलकुल अपनी समझ लेते हैं और बीचोंबीच

आसमान की तरफ़ सिर उठाकर चलते हैं। और बुरा यह कि यदि किसी से टकरा जाँय तो उलटा उसे डाटेंगे—'क्योंजी तुम देखकर नहीं चलते।' परन्तु ये लोग स्वयम् नहीं हटेंगे।

जो दूसरों को मार्ग नहीं देते, जो दूसरों की सुविधा और असुविधा का ख्याल न करके स्वयम् सारी सड़क पर क़ब्ज़ा जमाना चाहते हैं, वे स्वार्थी और गँवार हैं।

हमको ठीक तौर से सड़क पर चलना सीखने की ज़रूरत है। इतना ही नहीं, सड़क पर हम थूकेंगे नहीं। सड़क पर हम नारंगी या केले के छिलके नहीं फेंकेंगे। सड़क के किनारे हम पेशाब नहीं करेंगे। सड़क पर हम सिगरेट का जला हुआ टुकड़ा नहीं फेंकेंगे। क्योंकि सड़क हमारी ही नहीं है, वह सब की है। सड़क को गन्दा करने का हमें अधिकार नहीं है। इसके अलावा, क्या तुम जानते हो शहरों की सड़कों पर केले के छिलके से कभी-कभी कैसी दुर्घटना हो जाती है? दिल्ली के चाँदनी चौक की सड़क पर एक दफ़े एक ईसाई महिला का पैर केले के छिलके पर इस बुरी तरह से फिसला कि वह गिरते ही बेहोश हो गयी। इलाहाबाद स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर इसी प्रकार मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का पैर फिसल गया। वह गिर पड़े और उनके घुटने की हड्डी टूट गयी। इसलिए हम केले का छिलका तक सड़क पर नहीं फेंकेंगे,

क्योंकि सड़क पर हमीं अकेले नहीं चलते। उस पर सब चलते हैं।

परन्तु सड़क पर ही लोगों से भेट नहीं होती। हम सुबह से शाम तक अनेक लोगों के सम्पर्क में आते हैं। अनेक लोगों से मिलते हैं। बात करते हैं। उठते-बैठते हैं। खेलते हैं। इसलिए दूसरों को मार्ग देकर चलने का नियम केवल सड़क के लिए ही नहीं है। बल्कि हम घर में, स्कूल में, पड़ोसियों में, मित्रों के मध्य में, और अपरिचितों के बीच में, सभी जगह दूसरों की सुविधा का ख्याल रख कर चलेंगे। हम सड़क पर किसी का मार्ग न रोकें। सड़क पर भीड़ लगा कर खड़े न हों। दूसरों को धक्का देकर न चलें।

जीवन के मार्ग में इसका यही मतलब है कि हम किसी की उन्नति में बाधक न हों। किसी को नुक़सान न पहुँचायें। नियम और संयम का पालन करें। टिकटघर पर जब हम पहुँचें तो एक पंक्ति बाँध कर टिकट लें। यह भी सड़क का ही नियम है।

सरा यदि खड़ा हुआ है तो उसे हम बैठने को जगह देंगे। दूसरा यदि बैठा हुआ है तो उसकी जगह हम स्वयम् बैठने का प्रयत्न नहीं करेंगे। हम कभी कोई ऐसा काम नहीं करेंगे जिससे दूसरों को असुविधा हो। दूसरों की सुविधा के लिए हम स्वयम् थोड़ी असुविधा सहन करेंगे, तभी हमें सुविधा मिल सकती है।

सड़क पर बाँयी ओर हट कर चलने के नियम से हमें यही उपदेश मिलता है।

सड़क पर बायीं ओर हट कर चलना सीखना नागरिकता की पहली सीढ़ी है। हमें इससे सीख मिलती है कि अपने गाँव और पड़ोस के लोगों की सुविधा का उतना ही ख्याल रक्खें जितना अपनी सुविधा का रखते हैं। परस्पर मिलजुल कर रहें। किसी को कष्ट न पहुँचायें। किसी के धर्म को बुरा न समझें। सब को अपनी इच्छा के अनुकूल जीवन-पथ पर चलने दें।

बारहवाँ अध्याय

स्कूल में

नागरिक के गुण—समाज में रहने का उद्देश्य है मिल-जुलकर अपनी उन्नति करना। जब तक हम अपनी उन्नति नहीं करेंगे, समाज की उन्नति नहीं कर सकते। जब तक हम अपने को नहीं सुधारेंगे, समाज को नहीं सुधार सकते।

समाज में रहकर ही हम अपने को सुधारते हैं। समाज में रहकर हमें अपने उन सब गुणों के विकास में सहायता मिलती है, जिनका एक नागरिक में होना आवश्यक है।

नागरिक के गुण हैं

(१) सदैव अपने कर्त्तव्य का पालन करना

(२) दूसरों की सुविधा का ख़्याल रखना

(३) किसी की बुराई न करना

(४) मिल-जुलकर काम करना

(५) अपने से बड़ों की आज्ञा मानना और

(६) दीन दुखियों की सेवा करना। इत्यादि

इसका यह मतलब नहीं कि नागरिक के इतने ही गुण हैं। यहाँ हमने केवल उदाहरण के लिए कुछ गुण दिये हैं।

समाज में रहकर हमें इन सब गुणों के विकास में सहायता मिलती है। समाज में रहकर हम आदमी बनते हैं।

परिवार एक समाज है। गांव एक समाज है। स्कूल भी एक समाज है। स्कूल में कई लड़के रोज एक ही उद्देश्य से इकट्ठे होते हैं। वह उद्देश्य है शिक्षा-प्राप्ति।

स्कूल का यह समाज पहला समाज है जहाँ हम आत्मोन्नति का पाठ पढ़ते हैं।

स्कूल में हम पढ़ना-लिखना ही नहीं सीखते। वहाँ हम और अच्छे गुण भी सीखते हैं। वहाँ हम समाज में रहना सीखते हैं। हमारी सामाजिक शिक्षा स्कूल से ही प्रारम्भ हो जाती है।

स्कूल बालकों का एक सुन्दर समाज है। कितने तरह-तरह के लड़के वहाँ पढ़ते हैं! हिन्दू भी, मुसलमान भी, ईसाई भी, सिक्ख भी। सभी जाति और धर्म के लड़के वहाँ आते हैं और एक साथ बैठ कर शिक्षा प्राप्त करते हैं। इनमें अच्छे लड़के भी होते हैं, बुरे भी। साफ़-सुथरे भी होते हैं, मैले-कुचैले भी। तगड़े भी होते हैं और कमज़ोर भी। परन्तु सब एक साथ

बैठते हैं। एक साथ उठते हैं। एक साथ पढ़ते हैं। एक साथ खेलते हैं। कोई किसी से घृणा नहीं करता। कोई किसी को ग़रीब नहीं समझता। कोई किसी को अमीर नहीं समझता। सब एक दूसरे के लिए बराबर हैं। सब एक मास्टर का कहना मानते हैं। सब एक स्कूल के विद्यार्थी हैं। कोई छोटा या बड़ा नहीं है। कोई अमीर या ग़रीब नहीं है। कितना सुन्दर समाज है यह !

कोई छोटा है, या बड़ा। कोई अमीर है या ग़रीब। स्कूल में इसका ख्याल ही तुम्हें नहीं आता। तो फिर क्या ख्याल आता है? तुम्हारे सहपाठी कौन हैं ? तुम्हारे मित्र कौन हैं ? हिन्दू हैं, या मुसलमान ? ईसाई हैं या सिक्ख ? ब्राह्मण हैं या कहार ? तुम्हें इससे मतलब नहीं। तुम तो इतना जानते हो कि वे सब तुम्हारे मित्र हैं। सब तुम्हारे सहपाठी हैं।

पहले दिन ही जब स्कूल खुलता है तो लड़के सब एक दूसरे के दोस्त बन जाते हैं। कौन क्या है यह जानने की फ़िक्र नहीं होती। सब एक मास्टर की आज्ञा मानते हैं। सब स्कूल के नियम का पालन करते हैं। मास्टर यदि दस बजे आने को कहते हैं तो सब लड़के दस बजे स्कूल पहुँचने की कोशिश करते हैं। वे यदि आठ बजे बुलाते हैं तो सब लड़के आठ बजे पहुँचने की कोशिश करते हैं। वे जो कहते हैं सब लड़के वही करते हैं।

इसके अतिरिक्त और कितनी ही बातें होती हैं। आज एक लड़के से लड़ाई हो जाती है तो कल फिर दोस्ती हो जाती है। लड़ाई बिलकुल भूल जाते हैं। श्यामू से अगर आज मार-पीट हो गयी तो कल फिर तुम उसके घर पहुँच जाते हो और खेलने लगते हो। मानो कुछ हुआ ही नहीं। और अगर तुम्हारी किताबें खो जाती है तो श्यामू तुम्हें पढ़ने के लिए अपनी किताबें दे देता है। क्योंकि तुम भी उसे अपनी चीज़ प्रसन्नतापूर्वक दे देते हो।

इसके बाद, जिस स्कूल में हम पढ़ते हैं वह हम सब का ही स्कूल है। हम सब को उसका एक-सा गर्व है। वह उन सब लड़कों का स्कूल है जो उसमें पढ़ते हैं। उसमें हिन्दू भी हैं, मुसलमान भी हैं, सिक्ख भी हैं, ईसाई भी हैं। ब्राह्मण भी हैं, मोची भी हैं। ग़रीब भी हैं। अमीर भी हैं। उसमें सब शामिल हैं। वह किसी एक लड़के का नहीं है। न किसी हिन्दू का। न किसी ईसाई का। न किसी अमीर का। न किसी ग़रीब का। वह सब का स्कूल है। सब उसमें पढ़ते हैं। उसकी इज्ज़त के लिए वह सब मरने-मारने को तैयार रहते हैं।

यह एक बड़ी ख़ास बात है। स्कूल का जहाँ सम्बन्ध होता है, हम वहाँ नीच-ऊँच, हिन्दू-अहिन्दू आदि का कोई फ़र्क़ नहीं करते। हिन्दू होने से स्कूल के प्रति किसी का प्रेम बढ़ नहीं

जाता। मुसलमान होने से घट नहीं जाता। सब उससे एक-सा प्रेम करते हैं। सब उसे एक-सा अपना समझते हैं।

इसके बाद एक और बात भी है। हम स्कूल को अपना जरूर समझते हैं, परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि हम उसे ही सब कुछ समझें। इसका यह मतलब नहीं कि अपने स्कूल की हर बात में झूठी प्रशंसा करें। इसका यह मतलब भी नहीं कि अपने स्कूल की बड़ाई दिखाने के लिए हम दूसरे स्कूल की बुराई करें। इसका यह मतलब भी नहीं कि हम अपने स्कूल के लाभ के लिए दूसरे स्कूल का नुक़सान करें।

हम यदि ऐसा करें तो वह हमारा सच्चा स्कूल-प्रेम नहीं होगा। वह हमारा स्वार्थ होगा। स्वार्थ के वशीभूत होकर आदमी हमेशा ग़लत कार्य करता है।

अतएव स्कूल का जो छोटा-सा समाज है उसमें सबसे पहली शिक्षा हमें यह मिलती है:—

(१) किसी को छोटा या बुरा न समझना। सब को बराबर समझना और अपना मित्र मानना

(२) नियम का पालन करना। जिसके अधीन हमें काम करना पड़े उसकी आज्ञा मानना

(३) किसी के प्रति द्वेषभाव न रखना

(४) मिलजुल कर रहना। और समय पर एक दूसरे की सहायता करना

(५) किसी दूसरे समाज की बुराई न करना और न उसका अहित चाहना

ये सब शिक्षाएँ हमें स्कूल के सामाजिक जीवन से मिलती हैं। अपने सार्वजनिक जीवन में यदि हम उनका उपयोग न करें तो स्कूल में पढ़ने से लाभ ही क्या हुआ ?

स्कूल से बाहर निकल कर हम समाज में प्रवेश करते हैं। पढ़ कर बड़े होते हैं। नौकरी या कोई और धन्धा करते हैं। समाज के मामलों में दिलचस्पी लेते हैं। सभा-सुसाइटियों में जाते हैं। इस तरह हमारा सामाजिक जीवन शुरू होता है। स्कूल के जीवन में और इस नये सामाजिक जीवन में बहुत अधिक फ़र्क़ नहीं है।

स्कूल में रहने का हमारा जो उद्देश्य होता है वही समाज में रहने का भी होता है। स्कूल में हम जो सीखते हैं वही हमें समाज में भी सीखने को मिलता है। स्कूल में हम जो नियम पालन करते हैं, समाज में भी हमें उनका ध्यान रखना पड़ता है। अन्तर यदि है तो यही कि स्कूल की बजाय हमारे इस नये सामाजिक जीवन का कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है। स्कूल में हमें सार्वजनिक कार्य करने का इतना अवसर नहीं मिलता.

जितना समाज में मिलता है। स्कूल का दायरा छोटा है। परन्तु समाज का क्षेत्र विस्तृत है। स्कूल की बजाय समाज में हम अधिक लोगों के संसर्ग में आते हैं, और अनेक प्रकार के कार्य हमें करने को मिलते हैं। वहाँ अपने व्यक्तित्व के विकास का हमें पूरा अवसर मिलता है।

स्कूल में तो हम श्यामू की इतनी ही मदद कर सकते हैं कि किसी लड़के के हाथ से पिटने से उसकी रक्षा करें, या वक़्त पर उसे हम अपनी क़लम या दावात दे दें। इससे ज्यादा कुछ ध्यान भी हमें नहीं आता।

श्यामू को हम क़लम या दावात दे देते हैं। इसलिए नहीं कि वह क़लम ख़रीद नहीं सकता। बल्कि इसलिए कि वक़्त पर एक मित्र दूसरे के काम आता ही है। यदि ऐसा न करे तो वह मित्र ही क्या ?

परन्तु स्कूल से बाहर निकल कर जब तुम अपना सामाजिक जीवन शुरू करोगे तो तुम देखोगे कि तुम्हारे गाँव में, तुम्हारे समाज में, तुम्हारे देश में, दर असल कितने ही श्यामू, कितने ही रामू, कितने ही बदलू, ऐसे हैं जिन्हें दोनों वक़्त भर पेट भोजन भी नसीब नहीं होता। उनके मा-बाप सचमुच इतने ग़रीब हैं कि क़लम उनके लिए बहुत बड़ी चीज़ है। उनके पास पैसा नहीं। खाने-पीने का कोई ज़रिया नहीं। वे सब हमारे

आसरे हैं। वे सब हमारा मुँह ताकते हैं। क्या हम उनकी सहायता नहीं करेंगे ?

इसके बाद, स्कूल में एक दुष्ट और शरारती लड़के के हाथ से तुम श्यामू को पिटने से बचाते हो, उसकी रक्षा करते हो।

यह तुम इसलिए नहीं करते कि श्यामू कमजोर है, और सबल के हाथ से दुर्बल की रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। इसका ध्यान तुम्हें नहीं आता। परन्तु मित्र की रक्षा भी तो कोई चीज़ है। इसलिए श्यामू के लिए तुम पिटने और पीटने को तैयार हो जाते हो।

परन्तु स्कूल से बाहर निकल कर तुम देखोगे कि इस असल दुनिया में दीन-दुखियों और ग़रीबों की कमी नहीं है। क्या उनकी सेवा करना हमारा कर्त्तव्य नहीं है ?

समाज में आकर हमारा जीवन अधिक सार्वजनिक हो जाता है। फिर अकेले स्कूल से हमारा मतलब नहीं रहता। दुनिया के सैकड़ों काम करने को हमारे सामने होते हैं। समाज का काम करना, बिरादरी का काम करना, देश-हित के कामों में भाग लेना, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि के चुनाव में भाग लेना; तथा ऐसे ही और काम करना।

इस सार्वजनिक जीवन के भीतर नागरिक जीवन के सब कर्त्तव्य शामिल हैं, परन्तु नागरिक कहने से देश और राष्ट्र

के प्रति हमारे जो कर्त्तव्य हैं उनका एक विशेष रूप से बोध होता ।

सच्चे नागरिक का जीवन सार्वजनिक जीवन होता है। वह सब बातों में दिलचस्पी लेता है, और सब के प्रति अपने कर्त्तव्य का यथोचित पालन करता है। वह शासन सम्बन्धी मामलों में ही दिलचस्पी नहीं लेता, बल्कि अपने कुटुम्ब, अपने गाँव, अपने समाज, अपनी जाति, अपने प्रान्त, अपने देश, और समस्त मानव-जाति के प्रति समान रूप से अपने कर्त्तव्य का पालन करता है।

तेरहवाँ अध्याय

सार्वजनिक जीवन

सार्वजनिक जीवन क्या है ?

गाँव, क़स्बे, या शहर के हरएक मामले में दिलचस्पी लेना, सभा-सुसाइटियों में शामिल होना, देशहित के कामों में यथाशक्ति भाग लेना, स्कूल खुलवाना, अस्पताल खुलवाना, शिक्षा का प्रचार करना, दीन-दुखियों को सहायता के कामों में हिस्सा लेना, यह सब सार्वजनिक कार्य हैं। इनकी गिनती मुश्किल है। केवल अपने कुटुम्ब की चिन्ता न करके दूसरों के हित की चिन्ता में भी थोड़ा समय व्यतीत करते रहना सार्वजनिक जीवन व्यतीत करना कहलाता है।

क्या तुम्हारे यहाँ टाउन एरिया है ? पंचायत है ? डिस्ट्रिक्ट बोर्ड है ? क्या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के किसी मेम्बर से तुम परिचित हो ?

क्या तुम्हारे यहाँ काँग्रेस कमेटी है ? क्या तुम उसके सभापति से परिचित हो ?

क्या तुम्हारे यहाँ कोई सेवा-समिति है ? क्या उसके मन्त्री से तुम परिचित हो ?

डिस्ट्रिक्ट वोर्ड का मैम्बर, काँग्रेस कमेटी का सभापति, सेवा-समिति का मन्त्री, ये सभी सार्वजनिक कार्यकर्त्ता हैं।

ये कार्यकर्त्ता यदि उन सामाजिक नियमों का पालन नहीं करते जिनकी शिक्षा हमें स्कूल के जीवन से मिलती है तो वे कार्यकर्त्ता होने के योग्य नहीं। सार्वजनिक कार्यकर्त्ता का उद्देश्य देश और समाज के जीवन को सुधारना है। उसका उद्देश्य अच्छे नागरिक पैदा करना है। अतएव यदि वह स्वयम् अच्छा नागरिक नहीं होगा तो दूसरों को नागरिक बनने की शिक्षा कैसे दे सकता है। यदि वह स्वयम् सच्चरित्र और ईमानदार नहीं होगा, तो दूसरों को वैसा वनने की शिक्षा कैसे दे सकेगा ?

सार्वजनिक जीवन की सव से पहली सीढ़ी है सच्चाई और ईमानदारी।

सार्वजनिक कार्यों में सव लोग समान रूप से भाग नहीं ले सकते। क्योंकि सव के पास इतना समय नहीं होता। फिर भी प्रत्येक व्यक्ति को अपना थोड़ा या वहुत समय दूसरों के हित में लगाना ही चाहिए।

साथ ही समाज में ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता भी होती है जो देश की सेवा के लिए अपने को अर्पित कर दें। क्योंकि जब तक एक व्यक्ति किसी कार्य में अपना जीवन नहीं देता, तब तक सफलता नहीं मिलती। प्रत्येक सामाजिक कार्य के लिए थोड़े से ऐसे उत्साही कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता होती है, जो अपने समय और धन की परवा न करके दिन-रात उसी धुन में लगे रहें और ईमानदारी से काम करते रहें।

मान लो तुम्हें अपने गाँव में एक सभा क़ायम करनी है। अब उसके लिए कौन मुसीबत उठाये? कौन सब के घर जाये? कौन चन्दा उगाये? कौन काग़ज़ क़लम में पैसा ख़र्च कर दे? कौन अपना वक़्त दे? जिसके पास जाओ, वही कहेगा, भाई हमें वक़्त नहीं। अतएव सभा यदि तुम्हें क़ायम करनी है तो तुम्हें ही यह सारा कार्य करना पड़ेगा। शुरू से आख़िर तक तुम्हें ही अगुआ बनना पड़ेगा। शुरू से आख़िर तक तुम्हें ही अपना सबसे ज्यादा वक़्त देना पड़ेगा। तुम्हें ही थोड़ा त्याग करना पड़ेगा। अन्यथा कार्य चल नहीं सकता।

उसके बाद तुम्हारी लगन से जब सभा क़ायम हो जायगी तो लोग अपने आप दिलचस्पी लेने लगेंगे। परन्तु तुम्हें फिर भी सब से ज्यादा काम पड़ेगा। क्योंकि सब लोग उसमें एक सी दिलचस्पी नहीं ले सकते। बहुत से तो ऐसे होंगे जो यह

सोचेंगे, 'सभा से हमें मतलब ? कल खतम होती हो तो आज खतम हो जाय।' सम्भव है वे चन्दा भी न दें। ऐसे व्यक्तियों को उत्साहित करते रहने के लिए तुम्हें वार-वार उनके पास जाना पड़ेगा और अपना समय देना पड़ेगा। चाहे वह रामायण सभा हो, चाहे वह किसान-सभा हो। चाहे वह मज़दूर सभा हो। उस सभा के लिए तुम्हें अपने को अर्पित कर देना पड़ेगा। लगन से ही तुम्हें सफलता मिल सकती है। लगन के विना कुछ नहीं हो सकता।

जो कार्य जितना वड़ा होता है, उसके लिए उतना ही अधिक समय देना पड़ता है। उतना ही अधिक त्याग करना पड़ता है। सभा की वजाय मान लो तुम एक वड़ा स्कूल क़ायम करने की वात सोचो। तो उसके लिए तुम्हें अपना जीवन सौंप देना पड़ेगा, यहाँ तक कि अपनी गृहस्थी की चिन्ता भी छोड़नी पड़ेगी।

सभी देशों में, सभी काल में, इस प्रकार के महापुरुष पैदा हुए हैं और होते रहते हैं, जिन्होंने किसी एक वड़े काम के लिए, किसी एक महान् उद्देश्य के लिए अपने को देश के अर्पित कर दिया। देश ही उनका घर वन गया। देश ही उनका परिवार वन गया। देश ही उनका सव कुछ वन गया। देश के लिए उन्होंने जीवन दे दिया। राममोहन राय, स्वामी

दयानन्द, गोपालकृष्ण गोखले, सर सैयद अहमद खाँ, स्वामी श्रद्धानन्द ऐसे ही व्यक्ति थे। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, लाला लाजपतराय, देशबन्धु चितरंजन दास और त्यागमूर्त्ति मोतीलाल नेहरू के नाम भी हमारे देश की निधि हैं। हमारे बीच में आज भी उनके उदाहरण मौजूद हैं।

देश-सेवा ही जिनके जीवन का व्रत है और देश के लिए जिन्होंने सर्वस्व त्याग रक्खा है, क्या ऐसे व्यक्तियों के नाम तुम बता सकते हो?

महात्मा गान्धी का नाम सारे भारत में ही नहीं, आज सारे सभ्य संसार में प्रसिद्ध है। पंडित जवाहर लाल नेहरू को भी सब लोग जानते हैं। क्यों

———

...दहवाँ अध्याय

सार्वजनिक कार्यकर्त्ता

सार्वजनिक कार्य का आदर्श—जैसा हमने कहा है, सार्वजनिक कार्य-कर्त्ता को स्कूल के सामाजिक जीवन के सभी नियमों का पालन करके चलना पड़ता है। वह कभी किसी की बुराई नहीं करेगा। किसी से द्वेष नहीं करेगा। वह जो कुछ करेगा; निःस्वार्थ भाव से करेगा। किसी वस्तु या पद के लोभ से समाज-सेवा का नाम नहीं करेगा। सेवा का उद्देश्य सेवा ही होना चाहिए। उससे किसी फल की कामना नहीं करनी चाहिए। फल की कामना करने से सेवा का उद्देश्य नष्ट हो जाता है। उससे सेवा का सुख नहीं मिलता, स्वार्थ-सिद्धि भले हो जाय।

इसलिए कहा जाता है कि हम जो कुछ भी काम करें, वह निष्काम होकर करें। उससे किसी फल की कामना न करें। इसका मतलब यही है कि काम करना हमारा कर्त्तव्य है, इसीलिए काम करें। कर्त्तव्य-पालन के लिए जो कर्म किया जायगा, वह

कभी बुरा नहीं होगा, निष्फल नहीं होगा, दूसरों का कभी उससे कोई अहित नहीं होगा। क्योंकि कर्म करने का मतलब ही अच्छे काम करना है। कर्त्तव्य-पालन की दृष्टि से जो काम किया जायगा, वह तो कभी बुरा हो ही नहीं सकता। क्योंकि मनुष्य का कर्त्तव्य है अच्छे कर्म करना, न कि बुरे।

बोर्ड की मेम्बरी के चुनाव का जब वक्त आता है तो बहुधा एक स्थान से एक की जगह दो या दो से भी ज्यादा उम्मेदवार खड़े होते हैं। दोनों ही मेम्बर बनना चाहते हैं। इसलिए दोनों आपस में लड़ते हैं। वोट पाने के लिए दोनों तरह-तरह के उपाय काम में लाते हैं। हरएक उम्मेदवार अपनी तारीफ़ करता है। अपने नाम के परचे छपवाता है। और अपने दल के लोगों से अपनी प्रशंसा के पुल बँधवाता है। जनता को वह यह बताना चाहता है कि समाज-सेवा की योग्यता उसमें सबसे अधिक है। इसलिए वोट उसे ही मिलना चाहिए।

यह सचमुच बड़ा अजीब है कि सेवा के लिए हम आपस में झगड़ें। जो जनता की सेवा करना चाहता है, वह यदि कहे कि मैं बड़ा योग्य हूँ, बड़ा त्यागी हूँ, बड़ा समाज-सेवी हूँ, इसलिए वोट मुझे मिलना चाहिए तो यह सचमुच बड़ी हँसी की बात है। समाज-सेवी छिपा नहीं रहता। यदि सेवा का उसमें कुछ भाव है तो जनता की वह कुछ न कुछ सेवा करता ही रहता

है। जनता उसे जानती है। अपना परिचय देने की ज़रूरत उसे नहीं होती।

उसे तो केवल जनता से इतनी ही बात कहना चाहिए, 'मैम्बरी का मैं भी एक उम्मेदवार हूँ। यदि आप मुझे सेवा के योग्य समझें तो वोट मुझे ही दें।'

कहा जाता है कि इंगलैंड की पार्लियामेन्ट की मैम्बरी के चुनाव के वक्त एक उम्मेदवार ने केवल यही शब्द जनता से कहे थे—'यदि आप मुझे योग्य समझें तो वोट मुझे दें।' और सब से ज्यादा वोट उसे ही मिले थे। फिर भी लोग चुनाव के वक्त आपस में लड़ते हैं। वे लड़ते हैं मैम्बरी के लिए। पद के लिए। जनता पर अपना रुआब जमाने के लिए। मैम्बर कहलाने के लिए। मैम्बर हो जाने पर लोग उनकी इज्जत करेंगे, उनसे डरेंगे, उनका कहना करेंगे, उन से मैम्बर साहब कहेंगे। ये लोग लड़ते हैं इसके लिए। सेवा के लिए लड़ने की क्या ज़रूरत? जनता की सेवा क्या मैम्बर बनकर ही की जा सकती है? उसके तो कितने ही मार्ग हैं। सेवा ही यदि करनी है तो उसके अनेक प्रकार हैं। सच्चा समाजसेवी, सच्चा कार्यकर्त्ता पद का लोभ नहीं करता।

सार्वजनिक जीवन में हमें अकसर औरों के कार्यों की आलोचना करनी पड़ती है। साथ ही अपने कार्यों की आलोचना

सुनने के लिए भी हमें तैयार रहना पड़ता है। हम एक बात कहते हैं, तो दूसरा दूसरी बात। हम अपने सिद्धान्त का समर्थन करते हैं, तो दूसरा अपने सिद्धान्त का। दोनों अपने-अपने सिद्धान्तों के लिए लड़ते हैं।

परन्तु इसका यह आशय नहीं कि हम एक-दूसरे को बुरा-भला कहें। एक-दूसरे का अपमान करें। और सिद्धान्तों के लिए लड़ने जाकर एक दूसरे से सचमुच ही लड़ बैठें।

मान लो किसी आदमी का कोई काम तुम्हें पसन्द नहीं आया। तो उसने काम ही तो बुरा किया। वह स्वयम् तो बुरा हुआ नहीं। उससे हम बुराई क्यों मानें? उससे हम द्वेष क्यों करें? उसे हम बुरा क्यों कहें?

हम एक दूसरे के कामों की आलोचना तो करें, परन्तु एक-दूसरे की बुराई न करें, और न एक दूसरे की ईमानदारी में शंका ही करें। सार्वजनिक कार्यकर्त्ता को हर जगह इस सिद्धान्त का पालन करके चलना पड़ता है। अन्यथा वह अपने कार्यों में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

हम अपनी बात बराबर कहें। अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहें। जो सच है उससे कभी पीछे न हटें। बहादुरी इसी में है।

कार्यकर्त्ताओं को मिल कर कार्य करना पड़ता है। एक सभा में कई सदस्य होते हैं। उन सबको मिलकर रहना पड़ता है।

यदि वे आपस में लड़ें तो सभा का काम कैसे आगे बढ़ सकता है ?

इसी तरह देश की जो सेवा करते हैं, उसके हित के लिए जो अनेक प्रकार के कार्य करते हैं, और किसी एक विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए संगठित होते हैं, उनका एक होकर रहना बहुत आवश्यक है। उन सबको इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि उन सब का एक ही ध्येय है। एक ही लक्ष्य है। एक ही उद्देश्य है। वे सब एक ही कार्य की सिद्धि के लिए एकत्र हुए हैं। सब का उद्देश्य एक ही है। वह है देश-हित। देश-हित के कार्यों के लिए मिल कर आवाज़ उठानी पड़ती है। संगठित होकर आन्दोलन करना पड़ता है। तभी सफलता मिलती है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

स्वयम्-सेवक

सेवा-धर्म—क्या तुमने किसी सभा-सुसाइटी, या मेले में स्वयम्सेवकों को काम करते देखा है? अकसर ये लोग अपनी कमीज़ या कोट पर स्वयम्सेवक का बिल्ला लगाये रहते हैं। यह इसलिए कि ज़रूरत के वक़्त वे आसानी से पहचाने जा सकें।

स्वयम्सेवक लोग सभा-सुसाइटी या मेले में जनता की सेवा करने के लिए होते हैं। उनके कर्त्तव्य है।

(१) भीड़ को सँभालना

(२) छोटे बालकों की रक्षा करना

(३) अजनबी को मार्ग दिखाना

(४) भटके हुए को उसके ठिकाने पहुँचाना

(५) किसी को चोट-चपेट लग जाय तो उसकी सेवा करना

(६) कोई बीमार पड़ जाय, किसी को हैज़ा हो जाय, प्लेग हो जाय तो उसकी देखभाल करना, दवादारू करना, इत्यादि।

माघ के मेले में दल के दल स्वयम्सेवक प्रयाग जाते हैं और मेले के अवसर पर जनता की सेवा करते हैं।

जब हम किसी मेले में जायँ और वहाँ स्वयमसेवकों को खड़ा देखें तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनका सम्मान करें, उनकी इज्ज़त करें, उनकी आज्ञा का पालन करें। जैसा वह कहें, वैसा ही करें। जिस रास्ते से वह कहें, उसी से जायँ। ऐसा करके प्रबन्ध में हम उनकी सहायता करते हैं।

परन्तु स्वयम्सेवक का अर्थ क्या है ?

स्वयम्सेवक का अर्थ है जो स्वयम् अपने को सेवा के लिए अर्पित करे, अर्थात् सेवा का कोई फल न चाहे। जनता की जो निस्वार्थ सेवा करे वह स्वयम्सेवक है।

इस दृष्टि से समाज के सभी निस्वार्थ कार्यकर्त्ता स्वयम्सेवक हैं। फ़र्क़ इतना है कि इन स्वयम्सेवकों की तरफ़, जो सभा-सुसाइटियों और मेले में जनता की सेवा करते हैं, हमारा ध्यान नहीं जाता। उनकी सेवा का हमारी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं होता। उन स्वयम्सेवकों को हम छोटा समझते हैं। क्योंकि वे छोटा काम करते नज़र आते हैं।

परन्तु स्वयम्सेवक सब बराबर हैं। उनका कोई छोटा-बड़ा दर्जा नहीं होता। सब का उद्देश्य सेवा करना

है। सेवा सब बराबर होती है। छोटी सेवा का जो मूल्य होता है, बड़ी सेवा का भी वही। इसलिए छोटा कार्य करने से सेवा छोटी नहीं हो जाती, और न बड़ा कार्य करने से बड़ी।

सेवा का मूल्य आँका जाता है निःस्वार्थता से। सेवा की पहली शर्त है उसका निःस्वार्थ होना।

इसलिए निःस्वार्थ भाव से सेवा के लिए जो अपना जीवन अर्पित करता है, वही सच्चा स्वयम्सेवक है। सार्वजनिक कार्यों के लिए स्वयम्सेवकों को विशेष रूप से शिक्षित करने की आवश्यकता होती है। घायलों की सेवा करना, डूबते को बचाना, रोगी का उपचार करना, भीड़ में बालकों की रक्षा करना, भीड़ को रोकना और सँभालना, मेले का अन्य प्रबन्ध करना, ये सब कार्य स्वयम्-सेवक को सीखना होते हैं।

नियम और अनुशासन—स्वयम्-सेवक का आज्ञाकारी होना बहुत आवश्यक है। वह अपने दल के नायक की आज्ञा मानेगा। मन में कभी ख़्याल नहीं करेगा कि वह किसी की आज्ञा क्यों माने। यह धारणा बड़ी ग़लत होती है।

खेल के मैदान में यदि हम अपने नायक का कहना न मानें, और ख़्याल करें कि वह नायक होने के लायक़ ही नहीं तो खेल कैसे हो सकता है?

सेना में यदि सिपाही अपने सेनापति का कहना न मानें तो सैन्य-संचालन कैसे हो सकता है?

इसलिए हमें सभी जगह घर में, समाज में, सभा में, सुसाइटी में—नियम और अनुशासन मानकर चलना पड़ता है।

तुमने देखा होगा, सभा में अकसर हुल्लड़ मचता है। लोग शोरगुल करते हैं। कोई किसी की बात नहीं सुनता। सभापति यद्यपि शान्ति स्थापित करने की कोशिश करता है, परन्तु उसकी बात का कोई असर नहीं होता। यह सब असंयत-जीवन के लक्षण हैं।

यदि हमने किसी व्यक्ति को सभापति का आसन दिया है, यदि किसी को हमने अपना नायक माना है तो हम उसका सम्मान क्यों न करें, उसकी आज्ञा हम क्यों न माने?

सभापति का कर्त्तव्य ही यह है कि वह सभा का नियन्त्रण करे। इसलिए हम में से यदि कोई यह सोचने लगे, 'सभापति मुझे क्यों नहीं बनाया गया? मुझ में और यह जो सभापति बनाया गया है उसमें क्या फ़र्क़ है? मैं उसकी आज्ञा क्यों मानूँ,' तो यह वास्तव में बुरी बात है। इससे हमारी संकीर्णता प्रकट होती है।

असल में इन सारी बातों को हम इतना दुहरा चुके हैं कि उनके उल्लेख की जरूरत नहीं। हम किसी भी प्रकार के सार्व-

जनिक कार्य में लगे हों, सड़क पर चलने का जो सुनहला नियम है, उसे यदि हम ध्यान में रक्खेंगे तो कभी गलती नहीं कर सकते। और फिर स्कूल में भी हमें कितनी ही बातें सीखने को मिलती हैं। जैसे, अपने अध्यापक की आज्ञा मानना आदि।

सार्वजनिक कार्यकर्त्ता के लिए इस नियम की बड़ी आवश्यकता है। वह जिस दल में काम करता है, अथवा जिस सभा का वह सदस्य है उसके नायक या सभापति की वह आज्ञा पालन करेगा। भूल कर भी ना नुच नहीं करेगा। नायक जो कहे, वही करेगा। जहाँ जाने को कहे वहीं जायगा। उसमें कोई हीला-बहाना नहीं करेगा, बुरा भी नहीं मानेगा। उसकी आज्ञा से यदि गन्दे से गन्दा कार्य करने की भी जरूरत पड़े तो उसे वह उत्साहपूर्वक और ख़ुशी से करने को तैयार रहेगा।

क्या तुम सेना का नियम जानते हो ?

सेना का नियम है 'आँख मूँद कर नायक की आज्ञा मानना।' यह सैनिक नियम है। सेना का प्रत्येक सिपाही इस नियम का आँख मूँद कर पालन करता है।

सेनापति ने जहाँ कहा—'बढ़ो'। सारी सेना उसी वक़ आगे बढ़ जाती है। फिर चाहे मार्ग में खाई हो, खन्दक़ हो, पत्थर हो, इसकी परवा नहीं।

नायक की आज्ञा मानो—इस नियम का सेना में बड़ी सख्ती से पालन होता है। सिपाही के मुँह से जहाँ इनकार निकला कि उसी वक्त उसे गोली से उड़ा दिया जाता है।

इसे सेना का नियम या अनुशासन कहते हैं। जीवन में सभी जगह इसे मानने की ज़रूरत होती है।

जो स्वयम्सेवक है, जो सार्वजनिक कार्यकर्त्ता है उसके लिए तो यह नियम और भी आवश्यक है।

सोलहवाँ अध्याय

पड़ोसी-धर्म

पड़ोसी की आवश्यकता—थोड़ी देर के लिए सोच लो कि यदि तुम्हारे पड़ोस में कोई न हो, तुम्हारा घर सब से अलग और एकान्त में हो तो क्या तुम यह पसन्द करोगे ? क्या तुम्हें अकेला रहना अच्छा लगेगा ?

असल बात तो यह है कि हम जन्म से ही एक दूसरे के पड़ोस में रहते हैं इसलिए इस तरफ़ हमारा ध्यान ही नहीं जाता कि पड़ोसी यदि न हो तो कितना कष्ट हो।

रोज़ ही पड़ोसी की पुकार होती है। तुम्हारी माँ या पिता रोज़ ही किसी न किसी कार्य से तुम्हें अपने पड़ोसी के यहाँ भेजते होंगे। घर में कोई चीज़ नहीं तो पड़ोसी से माँग लाओ। सिर में दर्द है तो पड़ोसी से पूछो कि सिर दर्द की दवा तो नहीं है। रात में घर के किसी आदमी की, तुम्हारे भाई की या बहिन की, या किसी की भी सही, तबियत खराब हो गयी है।

अब क्या किया जाय ? किसे बुलाया जाय ? घर में नौकर भी नहीं। रात का वक्त है। वैद्य को कौन बुलाये ? तो पड़ोसी की पुकार हुई। दिन में भी, रात में भी, हँसी में भी, रंग में भी, शादी में भी गमी में भी—सभी वक्त पड़ोसी की पुकार। अगर कोई काम नहीं तो दिन में एक बार पूछ लिया, 'कहो भाई क्या हो रहा है ?' इतने से ही मन को कितना सन्तोष हो जाता है। पड़ोसी से बात कर ली। दिन में दस पाँच मिनट के लिए उसके पास बैठ लिये। फुर्सत हुई तो गपशप की, ताश खेले, जो मन में आया सो किया। मतलब यह कि दिन में एकाध दफे बात जरूर कर लेते हैं। और यदि उसके घर कोई बीमार हुआ तो उसके घर जाना, रोगी का हालचाल पूछना, और दवादारू का प्रबन्ध करना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। क्योंकि वक्त पर यदि हम पड़ोसी के काम न आयें तो वह हमारे काम कैसे आयगा ?

जीवन में पड़ोसी की आवश्यकता पद-पद पर पड़ती है। पड़ोसी के बिना हम रह नहीं सकते।

कोई घर बनवाते हैं तो अच्छा पड़ोस देखते हैं। किसी नये शहर में रहने जाते हैं तो अच्छा पड़ोस देखते हैं। किसी अजनबी जगह में रात को बसते हैं तो अच्छा पड़ोस देखते हैं।

मतलब यह कि पड़ोसी की सब जगह जरूरत पड़ती है। पड़ोसी यदि न हो तो शादी में, कौन हमारे घर काम-धन्धे में

हाथ बँटाने आये ? पड़ोसी यदि न हो तो कौन हमारी खुशी में हिस्सा बँटाने आये ? कौन हमारे घर मिठाई और पूड़ी खाने आये ? और किसके घर हम बाहर से आयी हुई कोई बढ़िया चीज़, कोई फल, कोई मिठाई सौग़ात में भेजें ? पड़ोसी यदि न हो तो कौन दुःख में हमें धीरज बँधाने आये ? पड़ोसी यदि न हो तो कौन भाईचारे का सम्बन्ध हमारे साथ निबाहे ? पड़ोसी यदि न हो तो कौन हमारे जीवन को मधुर और सरस बनावे ?

पड़ोसी भी कैसी चीज़ है !

सेवा पड़ोसी का सब से पहला धर्म है।

पड़ोसी स्वभाव से ही सेवक होता है। यदि उसमें सेवाधर्म नहीं है तो वह पड़ोसी नहीं है।

नज़दीक होने से ही कोई पड़ोसी नहीं हो जाता। पड़ोसी तो कुछ चीज़ ही और है।

जो पड़ोसी का धर्म-पालन न करे वह पड़ोसी नहीं।

इतना यदि तुम याद रक्खो तो पड़ोस में रहने का सुख तुम्हें और भी अधिक मिलेगा। पड़ोसी का दूसरा धर्म है त्याग।

पड़ोसी त्यागी होता है। आधी रात को यदि तुम उसे बुलाओ तो वह तुरन्त उठकर चला आयगा। उठकर आने का कष्ट तनिक भी अनुभव नहीं करेगा।

ज़रूरत के वक्त यदि कोई चीज़ तुम माँगो तो वह तुरन्त दे देगा। चीज़ दे देने का दुःख वह तनिक भी अनुभव नहीं करेगा।

दूसरों के लिए उठाये गये कष्ट को कष्ट न समझना; दूसरों के लिए बर्दाश्त किये गये दुःख को दुःख न समझना यह त्याग है।

पड़ोसी त्यागी होता है।

पड़ोसी का तीसरा धर्म है पर-दुःख-कातरता। पराये दुःख से जिसका मन कातर हो उठे, पराये दुःख को जो देख न सके, पराये दुःख से जो दुःखी हो उठे, इसे कहते हैं पर-दुःख-कातरता।

यदि किसी को कोई कष्ट है तो पड़ोसी तुरन्त दौड़ कर जायेगा।

पड़ोसी पर-दुःख-कातर होता है।

ऐसा पड़ोसी कितनी अच्छी चीज़ है।

परन्तु पड़ोसी का अर्थ क्या है ?

पड़ोसी क्या उसे कहेंगे जिसके मकान की दीवार तुम्हारे मकान की दीवार से लगी हो ?

तब तो तुम्हारे मकान से चार मकान छोड़कर जो घर है वह तुम्हारा पड़ोसी नहीं हुआ।

पड़ोसी क्या उसे कहेंगे जो तुम्हारे मकान से चार मकानों के इर्द-गिर्द रहता हो ?

तब तो गाँव में जो और लोग रहते हैं, वे हमारे पड़ोसी ही न रहे।

पड़ोसी क्या उसे कहेंगे जो हमारे गाँव में रहता हो ?

तब तो हमारे गाँव के आस-पास जो और गाँव हैं उनसे हमें कुछ मतलब ही न रहा !

सब हमारे पड़ोसी हैं। गाँव के आस-पास जो और गाँव हैं उनसे यदि हम कोई मतलब ही न रक्खें, उन्हें यदि हम अपना पड़ोसी ही न समझें तो यह कितनी बुरी बात है।

सब हमारे पड़ोसी हैं।

एक घर जैसे दूसरे घर का पड़ोसी है, वैसे ही एक गाँव दूसरे गाँव का पड़ोसी है। एक गाँव जैसे दूसरे गाँव का पड़ोसी है वैसे ही एक प्रान्त दूसरे प्रान्त का पड़ोसी है। एक प्रान्त जैसे दूसरे प्रान्त का पड़ोसी है, वैसे ही एक देश दूसरे देश का पड़ोसी है।

सब हमारे पड़ोसी हैं। सब हमारे भाई हैं। सबसे हमारा भाईचारे का सम्बन्ध है।

हमारे पुरखा इसका महत्त्व जानते थे। वे हमें सीख दे गये हैं कि मनुष्य-मात्र को अपना पड़ोसी समझना चाहिए। सारी पृथिवी को अपना कुटुम्ब मानना चाहिए। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' यह कितनी सुन्दर सीख है !

जिस दिन हर मनुष्य, मनुष्य-मात्र को अपना पड़ोसी मानना सीख जायगा, उस दिन एक मनुष्य दूसरे से लड़ना छोड़ देगा, एक गाँव दूसरे से ईर्ष्या करना छोड़ देगा, एक प्रान्त दूसरे से द्वेष करना त्याग देगा, एक देश दूसरे देश पर चढ़ाई करना छोड़ देगा।

कितना सुन्दर होगा वह दिन !

आओ हम सब मिलकर ईश्वर से ऐसे विश्व-बन्धुत्व की कामना करें !

दुनिया के लोग उसकी चर्चा कर रहे हैं और उसके लाने का प्रयत्न भी कर रहे हैं, परन्तु वह दिन अभी दूर है।

सत्रहवाँ अध्याय

प्राकृतिक स्थिति और समाज

समाज में कैसे रहना चाहिए? समाज के प्रति हमारे क्या कर्त्तव्य हैं? सार्वजनिक जीवन क्या है? इस प्रकार की तमाम बातें हम तुम्हें बता चुके हैं। पता नहीं कितनी उनमें से तुम याद रक्खोगे, कितनी भूल जाओगे।

परन्तु हम चाहते हैं कि उन सबका तुम अपने जीवन में व्यावहारिक उपयोग करो। इसलिए यहाँ थोड़े में अपने देश की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति का ज्ञान हम तुम्हें कराना चाहते हैं।

देश की प्राकृतिक स्थिति का समाज पर प्रभाव—प्रत्येक देश की प्राकृतिक अवस्था का वहाँ के समाज पर बड़ा असर पड़ता है। देश का जलवायु जैसा होता है, वहाँ के लोगों का रहन-सहन, तौर-तरीक़ भी वैसा ही होता है। कहा भी है 'जैसा देश वैसा भेष।'

जलवायु का असर मनुष्य के रहन-सहन पर ही नहीं पड़ता, बल्कि उसके रूप-रंग, रीति-रिवाज, धर्म-इतिहास आदि पर भी पड़ता है। मनुष्य का जैसा रहन-सहन होता है, जैसा खान-पान होता है, वैसे ही उसके विचार होते हैं। जैसे उसके विचार होते हैं वैसा ही वह कार्य करता है। उसके खान-पान रहन-सहन, आचार-विचार और काम-काज जैसे होते हैं, वैसा ही उसका समाज बनता है।

कहने का मतलब यह है कि जैसा देश और जलवायु होता है वैसे ही मनुष्य होते हैं। जैसे मनुष्य होते हैं, वैसा ही समाज होता है।

संसार में अनेक जातियाँ हैं। उनका रहन-सहन, आचार-विचार, रूप-रंग, संस्कृति और साहित्य एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। इसका कारण यह है कि जिन देशों में वे रहती हैं, वहाँ का जलवायु एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है। उदाहरण के लिए जो लोग सर्द मुल्कों में रहते हैं, उनका रंग गोरा होता है। क्योंकि उन्हें सूरज की रोशनी नहीं मिलती। परन्तु गर्म मुल्क में रहने वाले लोगों का रंग, सूरज की तेज़ रोशनी की वजह से साँवला या काला होता है। सर्द और पहाड़ी मुल्क के निवासियों का जीवन गर्म मुल्क के निवासियों की बनिस्बत अधिक कठि-नाइयों से भरा होता है। जहाँ लोगों का जीवन स्थिर नहीं होता,

जहाँ उन्हें भोजन की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह घूमना पड़ता है, वहाँ उनका विकास रुक जाता है। जहाँ खाने-पीने की कोई फ़िक्र नहीं होती, थोड़े ही परिश्रम से भोजन मिल जाता है और जीवन की कोई चिन्ता नहीं रहती, वहाँ लोग प्रायः आलसी और निकम्मे हो जाते हैं। जहाँ प्रकृति की मनुष्य पर कृपा होती है, नदियाँ और चौरस मैदान होते हैं, पानी समय पर बरसता है, वहाँ लोग आराम से समाज में रहते हैं और एक दूसरे की सहायता से पड़ोसी का धर्म उनमें जाग्रत होता है। फिर अपने समाज और गाँव की सेवा का ख्याल उन्हें होता है, और इस प्रकार ऊँचे भावों का विकास होने लगता है। ऊँची भावनाओं में ही साहित्य, कला, विज्ञान और दर्शन का विकास होता है। अच्छे-अच्छे ग्रन्थ लिखे जाते हैं। जीवन की तमाम समस्याओं की खोज की जाती है। संगीत और चित्र-कला का विकास होता है।

यही चीजें सभ्यता का अंग हैं। इसलिए जब तुम आगे चलकर संसार का इतिहास पढ़ोगे तो देखोगे कि सभ्यता का विकास उन्हीं देशों में पहले हुआ, जहाँ मनुष्य पर प्रकृति की कृपा है, जहाँ विशाल नदियाँ हैं, खेती के लिए चौरस मैदान हैं, और पानी वक़्त पर बरसता है। मानवी सभ्यता का विकास पहले-पहल हुआ चीन में याङ्ग्चेक्वांग और हांगहो के काँठे में;

भारतवर्ष में गंगा-जमना और सिन्ध-सतलज के काँठे में; ईरान में दजला-फ़रात के काँठे में और मिश्र में नील नद के काँठे में।

मिश्र देश का हाल तुमने पढ़ा होगा। वहाँ के विशाल पिरामिडों का नाम भी तुमने सुना होगा। विशाल नील नद के जल की बदौलत वहाँ के चौरस रेगिस्तानी मैदान में एक अजीब ही प्रकार की सभ्यता का जन्म हुआ। बड़े-बड़े विशाल पिरामिड और मन्दिर बने। चित्रकला की उन्नति हुई। यह सब नील नद की बदौलत हुआ। नील नद यदि न होता तो उस रेगिस्तानी मैदान में कौन रहने जाता, और कहाँ से सभ्यता का वहाँ विकास होता ?

इसी प्रकार ईरान की बस्तियों और वहाँ की जातियों का विकास बिना दजला-फ़रात के क्या कभी सम्भव था ? अपने देश में गंगा-जमना तो हमारी माता ही हैं। इन्हें हम पूज्य और पवित्र मानते हैं। यही हमें स्वर्ग ले जाने वाली हैं। कैसे अच्छे शब्दों में हमारी आर्य जाति के विकास की कहानी का इतिहास इन नदियों से झलकता है ! चीन और चीनियों की सभ्यता की भी यही कहानी है !

लोगों के रहन-सहन और आचार-विचार पर जलवायु का काफ़ी असर पड़ता है। गर्म मुल्क के लोगों को कपड़ों की कम ज़रूरत होती है जब कि सर्द मुल्क के लोग हमेशा अपने को

कपड़ों से ढके रहते हैं। सर्दी और गर्मी के प्रभाव से लोगों का पहनावा एक खास तरह का हो जाता है। अपने ही देश में देखो। अपने देश में कई स्थान ऐसे हैं जहाँ न तो ज्यादा सर्दी ही पड़ती है, न ज्यादा गरमी। ऐसे स्थानों में एक हलकी चादर, धोती और कुरते से लोगों का काम चल जाता है। न मोजों की जरूरत होती है, न जूतों की। परन्तु जो लोग सर्द और नम मुल्कों में रहते हैं, उन्हें अपने पैरों को हमेशा जूतों से ढके रहना पड़ता है। तुम देखोगे कि इन साधारण-सी बात का भी लोगों के आचार-विचार पर कितना असर पड़ता है।

सर्द मुल्क के लोग अपने पैरों की रक्षा के लिए हमेशा जूते पहने रहते हैं। यहाँ तक कि भोजन के समय भी उन्हें जूते उतारने का ध्यान नहीं आता। वे सब जगह जूते पहन कर जाते हैं। परन्तु हमारे देश में किसी बड़ी या पवित्र जगह में जूते उतार कर जाने का रिवाज है। जूते उतार कर जाना हमारे यहाँ शिष्टता का अंग है। क्योंकि हमारे यहाँ पहले जूतों का इतना रिवाज नहीं था। हमारे यहाँ लोग ज्यादातर नंगे पैरों रहते थे। ब्राह्मण खड़ाऊँ पहनते थे। बड़े आदमी यदि जूते पहनते भी थे तो हमेशा नहीं। इसलिए बड़ी जगह में जूते उतार कर जाना हमारी सभ्यता का एक अंग हो गया।

नहाने के सम्बन्ध में भी यही बात है। हमारे यहाँ स्नान एक धार्मिक कृत्य है। शुभ कार्य के पहले नहाने की हमारे यहाँ व्यवस्था है। क्योंकि पानी की कमी नहीं है, और गर्मी अधिक पड़ती है। परन्तु जहाँ पानी का अभाव है, अथवा जहाँ कड़ी सर्दी पड़ती है, वहाँ के लोगों में नित्य नहाने का नियम इतनी आसानी से नहीं चल सकता।

यह एक छोटा-सा उदाहरण है। परन्तु जलवायु का असर सारी चीजों पर पड़ता है। साहित्य पर, इतिहास पर, धर्म पर, कला पर—देश की सारी सभ्यता पर उसका असर पड़ता है। हमारे देश के सम्बन्ध में भी यही बात है।

अट्ठारहवाँ अध्याय

हमारा देश

हमारे देश का नाम भारतवर्ष है। हम सब भारत में पैदा हुए हैं। उसकी गोद में खेल-कूद कर बड़े हुए हैं। हम सब उसके अन्न-जल से पले हैं। भारत हमारा देश है। हम सब उसकी सन्तान हैं। वह हमारी माता के समान है। इसलिए हम उसे मातृ-भूमि कहते हैं।

हमारा देश सब देशों से विचित्र है—यहां सब तरह के लोग हैं। सब तरह की आबहवा है। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं, बड़ी-बड़ी नदियां हैं, रेगिस्तान हैं, झरने हैं, हरे-भरे मैदान हैं, घने जंगल हैं। सब तरह की चीजें पैदा होती हैं। सब तरह के जीव-जन्तु हैं। सब तरह के खनिज पदार्थ मिलते हैं। एक ओर कश्मीर में सर्दी खूब पड़ती है तो सिन्ध-बिलोचिस्तान में सख्त गरमी। एक ओर राजपूताने का रेगिस्तान है तो दूसरी ओर गंगा-जमना, सिन्ध और उसकी सहायक नदियों से सिंचे हुए हरे-भरे मैदान।

एक ओर हिमालय जैसा ऊँचा पहाड़ है तो दूसरी ओर गहन गम्भीर समुद्र। एक ओर यदि चेरापूँजो में घनघोर वर्षा होती है तो दूसरी ओर जैकबाबाद में पानी नाममात्र को भी नहीं बरसता। एक ओर यदि हमेशा पानी की बाढ़ आती रहती है तो दूसरी ओर लोग पानी को तरस जाते हैं। एक ओर युक्तप्रान्त, बिलोचिस्तान आदि में यदि चौरस मैदान हैं तो दूसरी ओर आसाम और बर्मा में घने जंगल।

अब निवासियों को लो। एक ओर कश्मीर के सुन्दर, सुडौल और गोरे निवासी हैं, तो दूसरी ओर मध्यप्रान्त के जंगलों में रहने वाले कुरूप और काले गौंड-भील। एक ओर राजपूताने और मेरठ जिले के लम्बे-तड़ंगे जवान हैं, तो दूसरी ओर आसाम और नैपाल की तराई के ठिगने और मज़बूत गोरखे। एक ओर यदि मारवाड़ के कुशल व्यापारी हैं तो दूसरी ओर युक्तप्रान्त, बङ्गाल और मदरास के कुशाग्र-बुद्धि नागरिक। एक ओर यदि आर्य धर्म का पालन करने वाली ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि अनेक जातियाँ हैं तो दूसरी ओर मुसलमान, पारसी और अँगरेज़ भी हैं। एक ओर यदि पंजाबी, मदरासी, सिन्धी आदि लोग हैं, तो दूसरी ओर बंगाली, गुजराती और महाराष्ट्री हैं। एक ओर यदि लोग हिन्दी या हिन्दोस्तानी बोलते हैं तो दूसरी ओर बङ्गाली,

गुजराती, मराठी, और तामिल, तलगू, आदि द्रविड़ भाषा-भाषी हैं।

इस प्रकार हमारा देश विचित्रताओं की खान है। यहाँ हर तरह की बातें हैं। हर चीज के नमूने मौजूद हैं। हर तरह के लोग हैं। हर तरह की भाषा बोली जाती है। प्रत्येक ऋतु का आनन्द है। नाना प्रकार के फूलों की मीठी गन्ध है। अनेक प्रकार के मधुर फलों का स्वाद। गर्म और सर्द, खुश्क और तर सभी तरह की आबहवा हैं। जो जिस भाग में रहता है उसे वैसा ही जलवायु मिलता है। जिसे जैसा जलवायु मिलता है, उसका रहन-सहन आचार-विचार वैसा ही होता है। ऐसा विचित्र देश शायद ही कहीं हो!

भारतवर्ष एक अखंड देश है—भारत में तरह-तरह की जातियां हैं। तरह-तरह के लोग रहते हैं। तरह-तरह का खानपान है। तरह-तरह की बोली है। फिर भी भारत एक अखंड देश है। वह शुरू से आखिर तक एक है।

सारा भारत एक धर्म के सूत्र में बँधा हुआ है। वह धर्म है हिन्दू धर्म। सारे देश में हिन्दुओं के तीर्थस्थान फैले हुए हैं। उत्तर में बद्रीनाथ और केदारनाथ। दक्खिन में रामेश्वर, पूरब में बैजनाथ और जगन्नाथपुरी और पच्छिम में द्वारिका। इसी प्रकार हमारी पवित्र नदियों का माहात्म्य सारे देश में समान है।

उत्तर में सिन्ध, गंगा, ब्रह्मपुत्र इत्यादि हैं, तो दक्खिन में गोदावरी, कृष्णा, कावेरी। स्नान करते समय हम आज भी उस प्राचीन मन्त्र का जाप करते हैं—

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति,
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन्न सन्निधिं कुरु।

अर्थात् 'हे गंगे, यमुने, गोदावरि, नर्मदे, सिन्धु और कावेरी तुम इस जल में प्रवेश करो। इसे पवित्र करो।'

इतने बड़े देश में तरह तरह के लोगों का होना बहुत स्वाभाविक है। परन्तु जहाँ तक हिन्दुओं का सम्बन्ध है भारत भर में उनके रीति-रिवाज, आचार-विचार एक हैं। वेद, उपनिषद्, रामायण, और महाभारत का सर्वत्र एक-सा आदर होता है। राम और कृष्ण को सब श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखते हैं। मैसूर के हिन्दुओं में रामायण का जो सम्मान है, वही आसाम या पेशावर के हिन्दुओं में भी है।

इसमें शक नहीं कि इस देश में मुसलमानों की संख्या भी कुछ कम नहीं है। परन्तु अब वे इसी देश के निवासी हैं और उनके रीति-रिवाज सारे देश में समान हैं। यहाँ के उनके तीर्थस्थान भी सारे देश के मुसलमानों के लिए समान पवित्र हैं। भारत जितना हिन्दुओं का देश है उतना ही मुसलमानों का भी। और सबसे महत्व की बात यह है कि हिन्दोस्तान में जो भाषा

बोली जाती है और जिसे हिन्दी या हिन्दोस्तानी कहते हैं उसके बोलने और समझने वाले भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक मौजूद हैं। हिन्दी-हिन्दुस्तानी सब जगह बोली और समझी जाती है। यद्यपि युक्त-प्रान्त, मध्य-देश, बम्बई, पंजाब आदि प्रान्तों में उसका सर्वाधिक प्रचार है, परन्तु हमारे देश में हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसका प्रचार सारे भारत में आसानी से हो सकता है।

इतना ही नहीं। प्राचीन-काल में सब पढ़े-लिखे लोगों की भाषा संस्कृत रही है। इसलिए भारत की संस्कृति हमेशा एक रही है। पुराने ग्रन्थों में सैकड़ों जगहों पर एक महादेश के रूप में उस का वर्णन हुआ है। जगह-जगह जन्म-भूमि के रूप में उसकी वन्दना की गयी है और उसके गुणों का बखान किया गया है।

परन्तु हमारा देश इतना बड़ा है, एक स्थान दूसरे स्थान से इतना दूर है, कि राजनैतिक एकता स्थापित करने में बड़ी कठिनाई हुई है। तरह-तरह की जातियों और धर्मों की वजह से देश में अनेक दल हो गये हैं। ये दल बहुधा आपस में लड़ते रहते हैं, जिससे देश का अहित होता है।

सीमाएँ —हमारे देश के उत्तर में आकाश छूने वाला हिमालय (हिम = बर्फ और आलय = स्थान) है जिसके नाम से ही प्रकट है

कि वह सदा बर्फ़ से ढका रहता है। इस पर्वत की श्रेणियाँ कश्मीर से आसाम तक फैली हैं। यह पर्वत दुनिया के सब पहाड़ों से अधिक ऊँचा है। इसी कारण इसको हमारे यहाँ लोग गिरिराज, गिरीश, गिरिपति आदि नामों से पुकारते आये हैं।

भारत के धर्म और साहित्य में हिमालय का एक विशेष स्थान है। उसका विराट् रूप, उसकी गोद में खेलती हुई अनेक नदियाँ, बर्फ़ से ढँकी हुई उसकी सफ़ेद चोटियाँ, इन सब का हमारे देश की कला पर बड़ा असर पड़ा है। हिमालय के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की सुन्दर कल्पनाएँ की गयी हैं। काव्यों में उसका ख़ूब वर्णन किया गया है। कैलाश पर्वत को महादेव का निवास-स्थान बताया गया है और पार्वती गिरिराज हिमालय की पुत्री बनी हैं। संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास ने अपने एक काव्य में हिमालय की उपमा पृथिवी के माप-दंड से दी है। जिससे कोई चीज़ नापी जाय उसे माप-दंड कहते हैं। कैसी अच्छी उपमा है। पृथिवी जैसी बड़ी चीज़ के नापने को बड़ी भारी पटरी भी चाहिए। वह पटरी हिमालय ही हो सकता है! कुछ कवियों ने इसे भारत देश का प्रहरी कहा है। यह कल्पना वास्तव में ठीक है। हिमालय पर्वत की चोटियाँ कई जगह इतनी ऊँची हैं कि उन्हें पार करना कठिन ही नहीं असम्भव भी है। ये चोटियाँ न ज़ाने कितने युग से ऊँची दीवार की तरह खड़ी हुई भारतवर्ष

की रखवाली कर रही हैं। इस तरफ़ से कभी कोई शत्रु भारतवर्ष पर आक्रमण नहीं कर सका।

सभी जगह इस पर्वतराज की चोटियाँ काफ़ी ऊँची हैं। उन्हें पार करके आना कठिन है। परन्तु पच्छिम की पहाड़ियों में कुछ दर्रे ऐसे हैं जिनमें होकर आना-जाना कठिन नहीं है। इस प्रकार के दो दर्रे खैबर और बोलन की घाटी के नाम से प्रसिद्ध हैं। खैबर की घाटी में होकर हमारे देश पर विदेशियों ने अनेक बार हमला किया है। सिकन्दर ने खैबर के दर्रे से ही भारत में प्रवेश किया। मुसलमान लोग भी इसी दर्रे से भारत में आये। इसलिए इस दर्रे की बदौलत हमारे देश में राजनैतिक उथल-पुथल ही नहीं होती रही, बल्कि हमारी सभ्यता, कला-कौशल आदि पर भी विदेशियों का बड़ा असर पड़ा। शुरू में यूनानी (यवन) हमारे देश में आये। वे लोग अपने देश की कला-कौशल, और सभ्यता अपने साथ लाये। उनके बाद मुसलमानों का आगमन हुआ। उनका भी हमारे देश की सभ्यता पर बड़ा असर पड़ा।

दक्खिन में जो हिन्द महासागर है वह एक अपार सागर है और हजारों मील तक फैला हुआ है। पुराने ज़माने में जब लोगों के पास बड़े-बड़े जहाज नहीं थे, तब इस मार्ग से भी हमारे देश में आना कठिन था। यही कारण है कि वर्षों तक इस रास्ते से

कोई शत्रु हमारे देश पर आक्रमण नहीं कर सका। सब से पहले इस रास्ते से युरोप के लोग आये। इन लोगों के पास बड़े-बड़े जहाज़ थे। ये लोग पहले यहाँ व्यापार के लिए आये थे। बाद में इन्होंने अपना राज्य यहाँ क़ायम कर लिया।

भारत के बीचोंबीच पच्छिम से पूरब तक विन्ध्याचल पर्वत फैला हुआ है। प्राचीन समय में इस पर्वत को तथा आस-पास के सघन और ऊबड़-खाबड़ जंगल को पार करना बड़ा कठिन था। इसलिए उत्तर में जब आर्य लोग आकर बसे तब दक्खिन के निवासियों पर उनकी सभ्यता का कोई असर नहीं पड़ा। इसलिए दक्खिन में द्रविड़ लोगों की एक अपनी ही सभ्यता का विकास हुआ। परन्तु विन्ध्याचल की ये श्रेणियाँ ऐसी नहीं थीं कि उनको पार ही न किया जा सके। इसलिए रामचन्द्रजी के समय से शीघ्र ही आर्य-सभ्यता का प्रचार दक्खिन में भी हो चला। आज कल तो उत्तर से दक्खिन तक एक ही सभ्यता है, एक ही धर्म है, एक ही रीति-रिवाज और आचार-व्यवहार है। उनके बाहरी रूप में भेद हो सकता है। परन्तु मूल में वे सब एक हैं। केवल दक्खिन के लोगों की भाषा ज़रूर दूसरी है। परन्तु आर्यों की प्राचीन संस्कृत भाषा का उस पर भी बड़ा गहरा असर पड़ा है। इस तरह हमारा देश एक बृहत प्रायद्वीप है। भौगोलिक दृष्टि से वह सब से अलग, एक अखण्ड

देश है। कुछ लोग उसे भिन्न-भिन्न देशों का समूह मानते हैं। परन्तु यह भ्रम है। हमारा देश सदैव एक रहा। उसकी एक सभ्यता रही। एक धर्म रहा। उसकी भौगोलिक एकता इसका सबूत है।

आर्यावर्त—हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में सिन्ध, ब्रह्मपुत्र, गंगा आदि नदियों से सिँचा, जो हरा-भरा उपजाऊ मैदान है, उसका हमारे देश के इतिहास में एक विशेष स्थान है। आर्य लोग पहले-पहल जब भारत में आये तो यहीं आकर टिके। इसलिए इस मैदान को अब भी आर्यावर्त्त कहते हैं।

यहाँ जल की कमी नहीं। सिन्ध, ब्रह्मपुत्र, और गंगा के सिवा छोटी-बड़ी मिलाकर बीसियों नदियाँ हैं। हिमालय ही की कृपा से हमको ये नदियाँ मिली हैं। इन नदियों की अनेक सहायक नदियाँ हैं। सिन्ध की सहायक नदियाँ हैं—सतलज, व्यास, रावी, चनाव और झेलम। ये नदियाँ भारत के पच्छिमी भाग को सींचती हुईं उत्तर-पूरब से दक्खिन-पच्छिम की ओर बहती हैं। इन नदियों द्वारा सिंचे हुए भाग का नाम पंजाब या पचनद पड़ा। इन्हीं नदियों की कृपा से यह देश हरा-भरा रहता है। आर्य लोगों ने सबसे पहले इन नदियों के आस-पास ही डेरा डाला। यहीं इन्होंने पहले-पहल वेदों के मन्त्र उच्चारण किये।

यहीं पहले-पहल उन्होंने ज्ञान की खोज की। यहीं पहले-पहल उपनिषद बने, गीता बनी। यहीं से पहले-पहल आर्य-धर्म का प्रचार हुआ।

इन नदियों से सभ्यता के विकास में बड़ी सहायता मिली। आने-जाने के मार्ग का कार्य नदियों से ही लिया जाता था। इन्हीं के ज़रिये व्यापार होता था। सिन्ध-गंगा के मैदान में, गंगा और जमना में होकर बहुत यात्रा होती थी।

हिन्दू राजाओं के ज़माने में पुराना राजपथ भी गंगा के किनारे-किनारे बना था। उस ज़माने में पच्छिम से गंगा और जमना के हरे-भरे और धनी देश में आने के लिए दिल्ली ही सब से आख़िरी मोर्चा था। उत्तर से आने के लिए कोई मार्ग नहीं था। इसीलिए दिल्ली इस देश की सबसे बड़ी राजधानी हो गयी और जितनी भी प्रसिद्ध लड़ाइयाँ हुईं वे सब पानीपत के मैदान में ही हुईं।

गंगा नदी सारे युक्त-प्रान्त, विहार, और बङ्गाल को सींचती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती । जमना, घाघरा, गोमती और रामगंगा इसकी मुख्य सहायक नदियाँ हैं। सिन्ध और ब्रह्मपुत्र दोनों नदियाँ कैलाश पर्वत के पास से निकलती हैं। इस प्रकार जलवृष्टि और नदियों के होने के कारण भारत के उत्तर की यह भूमि बड़ी उपजाऊ है। इसीलिए आर्यों की सभ्यता का उत्तर में

बड़ा विस्तार हुआ। उत्तर भारत के सब बड़े-बड़े नगर इन नदियों के किनारे बसे हैं। इन्द्रप्रस्थ, काशी, प्रयाग, पाटलिपुत्र इत्यादि आर्य सभ्यता के केन्द्र रहे हैं और सब गंगा या जमना के तट पर बसे हैं।

आर्य लोगों की सभ्यता का विस्तार गंगा के आस-पास ही हुआ। गंगा के आस-पास ही उनकी बड़ी-बड़ी बस्तियाँ बनीं। गंगा के आस-पास ही आर्यों ने अपने यज्ञ और हवन किये। इसलिए आश्चर्य नहीं जो गंगा का हमारे देश में इतना माहात्म्य है। गंगा को लेकर अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना हुई। अनेक प्रकार की सुन्दर कल्पनाएँ की गयीं। क्या तुमने गंगावतरण की कथा पढ़ी है? वह कथा और कुछ नहीं, आर्यों ने पहले-पहल गंगा नदी का परिचय कैसे पाया, इसका एक रूपक-मात्र है।

हमारा संयुक्त प्रान्त इसी आर्यावर्त का एक खास हिस्सा है। कुछ लोग इसे भारत का आँगन कहते हैं। कुछेक का ख्याल है कि असली हिन्दोस्तान यही है। क्योंकि सबसे पहले आर्यों की सभ्यता का विस्तार यहीं हुआ। यहीं सबसे पहले आर्यों ने अपने ज्ञान की ज्योति फैलायी। गंगा, जमना, बेतवा, केन आदि इस प्रान्त की मुख्य नदियाँ हैं। यहाँ अधिकतर लोग खेती करते हैं। गरमी के दिनों में यहाँ खूब गरमी पड़ती है और जाड़े के दिनों में जाड़ा भी काफी पड़ता है। मानसून की वजह से यहाँ बरसात अच्छी

होती है और यहाँ की भूमि भी खूब उपजाऊ है। ऐसी कोई चीज़ नहीं जो युक्त-प्रान्त के मैदान में पैदा न होती हो।

हमारे देश के इतिहास में यह प्रान्त हिन्दोस्तान के नाम से प्रसिद्ध है। हमारे धार्मिक ग्रन्थों और इतिहास इत्यादि की पुस्तकों में भो इसकी पवित्र और सुन्दर नदियों, इसके विशाल, धन-धान्यपूर्ण नगरों और इसके उन्नतिशील मनुष्यों का वर्णन मिलता है। गंगा-जमना के इसी हरे-भरे मैदान पर विदेशी जातियों की दृष्टि रही है और इसी के धन-वैभव के लालच में उन्होंने इस देश पर हमले किये हैं।

हमारे इस प्रान्त का इतिहास में सदा से एक ऊँचा स्थान रहा है। राम और कृष्ण की जन्मभूमि यहीं है। पठानों और मुग़लों ने भी इसी प्रान्त में सैकड़ों सुन्दर-सुन्दर भवन बनवा कर इसकी शोभा बढ़ायी है। शाहजहाँ बादशाह ने ताजमहल का रौज़ा यहीं (आगरे में) बनवा कर सारे संसार में इसका नाम प्रसिद्ध कर दिया है।

सभ्यता और इतिहास की उन्नति में भी हमारा प्रान्त सारे भारतवर्ष का अगुआ रहा है। महात्मा बुद्ध का जन्म इसी प्रान्त में हुआ। उन्होंने इसी प्रान्त में सबसे पहले अपने धर्म का उपदेश दिया। जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर स्वामी ने भी अपने धर्म का प्रचार यहीं से किया। प्रयाग, काशी, अयोध्या, मथुरा,

वृन्दावन, चित्रकूट, और हरिद्वार आदि प्रमुख तीर्थस्थान इसी प्रान्त में हैं।

आजकल राजनैतिक कारणों से भी हमारा प्रान्त अपना विशेष महत्व रखता है। नहरों का सबसे अधिक विस्तृत जाल, कृषि की अच्छी से अच्छी पैदावार, कला-कौशल और शिल्प की सबसे उत्तम चीज़ें भी यहीं अधिक बनायी जाती हैं।

उत्तर भारत में मेह बरसाने वाली हवाएँ हमारे प्रान्त से गुज़रती हैं और खूब जल बरसाती हैं। इसलिए गरमियों और जाड़े की ऋतु में यहां खूब खेती होती है।

यदि तुम प्रान्त के नक़्शे को देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि उसके चार प्राकृतिक भाग हो सकते हैं।

१—हिमालय प्रदेश

२—हिमालय की तराई का प्रदेश

३—गंगा-जमना का हरा-भरा मैदान

४—पठार प्रदेश

हिमालय पहाड़ तथा गंगा-जमना आदि नदियों से हमारे प्रान्त को विशेष लाभ पहुँचा है। बंगाल की खाड़ी से जो मान-सून हवा चलती है, वह हिमालय से टकरा कर गंगा-जमना के प्रदेश को सींचती है। इससे गंगा और जमना का मैदान विशेष उपजाऊ हो गया है। उपजाऊ होने से प्रान्त की सामाजिक और

आर्थिक उन्नति खूब हुई है। फिर भी हमारे प्रान्त के किसान बड़े ग़रीब हैं। सुख-सम्पत्ति शहरों में ही देखने में आती है। किसानों की अवस्था अच्छी नहीं है। परन्तु अब राजनैतिक अवस्था के परिवर्तन होने से किसानों की उन्नति के प्रयत्न तेज़ी से हो रहे हैं।

हमारे प्रान्त की मुख्य भाषा हिन्दी या हिन्दोस्तानी है। यह प्रान्त में सब जगह बोली और पढ़ी जाती है। जिसे हम उर्दू कहते हैं, वह भी हिन्दोस्तानी का ही रूप है। फ़र्क़ इतना है कि हिन्दी में संस्कृत के शब्द अधिक हैं; उर्दू में अरबी और फारसी के शब्द। हिन्दी नागरी लिपि में लिखी जाती है और उर्दू फ़ारसी अक्षरों में।

हमारे प्रान्त की कोई निश्चित प्राकृतिक सीमा नहीं है। उसके पच्छिम में राजपूताना, पूरब में बिहार-उड़ीसा, उत्तर में नैपाल-भूटान, तथा पच्छिम में मध्यप्रान्त तथा मध्य भारत की रियासतें हैं। इस तरह यद्यपि हमारे प्रान्त की कोई प्राकृतिक सीमा नहीं है, परन्तु वह सब प्रान्तों से अलग है। उसमें भौगोलिक एक्यता है। वह सब बातों में एक सूत्र में बँधा है।

हमारा प्रान्त मुख्य रूप से कृषि-प्रधान है। सब जगह खेती होती है। लोगों का पहनावा, तौर-तरीक़ भी एक है। भाषा भी एक है। धर्म भी यहाँ के लोगों का एक है। रहन-सहन में भी कोई फ़र्क़ नहीं है।

हमारे प्रान्त की आबादी	४,९६,१४,८३३ है।
अँगरेज़ी राज्य की आबादी	४,८४,०८,७३३
देशी रियासतों की आबादी	१,२०,६,०७०
	४,९६,१४,८३३

भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों की संख्या निम्नलिखित है:—

हिन्दू	४,०९,०५,५८१	८४.५	प्रति शत
जैन	६७,९५४	.१४	,,
सिक्ख	४६,५००	.१०	,,
बौद्ध	७३०	...	,,
मुसलमान	७,१५१,९२७	१४.४	,,
ईसाई	२,०५,००६	.४२	,,
पारसी	१९९		,,
यहूदी	६६		,,
अनिश्चित-धर्मावलम्बी	३		,,

प्रान्त में शिक्षा की बड़ी कमी है। हजार पीछे, केवल ५५ व्यक्ति पढ़े-लिखे हैं। हजार पीछे ९८ पुरुष और हजार पीछे ११ स्त्रियां पढ़ी-लिखी हैं। दूसरे प्रान्तों की अवस्था हमारे प्रान्त से भी बुरी है। परन्तु अब सब जगह शिक्षा-प्रचार तेज़ी से हो रहा है।

यदि तुम भारतवर्ष के राजनैतिक नक्शे को देखो तो तुम्हें पता चलेगा कि प्रायः सारा नक्शा लाल रंग का है। कहीं-कहीं

थोड़ा भाग पीला है। यह लाल रंग वाला प्रदेश सब अँगरेज़ों के अधीन है। पीले रंग में देशी राजाओं की रियासतें हैं।

देशी रियासतों में कश्मीर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, जयपुर, ग्वालियर, इन्दौर, हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर आदि बड़ी रियासतें हैं।

हमारे प्रान्त के उत्तर में नैपाल और भूटान दो स्वतन्त्र पहाड़ी रियासतें हैं। इनके अतिरिक्त प्रायः हर प्रान्त में छोटी-बड़ी रियासतें मौजूद हैं। इनमें देशी राजाओं का राज्य है। हिन्दुस्तान इतना बड़ा देश है और उसमें इतने अधिक मनुष्य रहते हैं कि सारे देश का प्रबन्ध करने के विचार से उसे कई बड़े-बड़े और छोटे-छोटे भागों में बाँट दिया गया है। अँगरेज़ी भारतवर्ष को राज्य-व्यवस्था की सुविधा के विचार से, इस प्रकार बाँटा गया है—

(१) संयुक्त प्रान्त—इसमें आगरा प्रान्त और अवध प्रान्त शामिल हैं। राजधानी इलाहाबाद है।

(२) पंजाब—इसकी राजधानी लाहौर है।

(३) उत्तर-पच्छिमी सीमा प्रान्त—इसकी राजधानी पेशावर है।

(४) बिहार—इसकी राजधानी पटना है।

(५) उड़ीसा—इसकी राजधानी कटक है।

(६) बंगाल—इसकी राजधानी कलकत्ता है।

(७) आसाम—इसकी राजधानी शिलांग है।

(८) मध्य प्रदेश और बरार—इसकी राजधानी नागपुर है।

(९) बम्बई प्रान्त—इसकी राजधानी बम्बई है।

(१०) मदरास प्रान्त—इसकी राजधानी मदरास है।

इन दसों जगहों का बड़ा हाकिम गवर्नर है। पाँच छोटे-छोटे प्रान्त और हैं, जिनका सबसे बड़ा हाकिम चीफ कमिश्नर कहलाता है। यह छोटे प्रान्त निम्नलिखित हैं—

(१) दिल्ली—एक छोटा-सा प्रान्त है। इसकी राजधानी दिल्ली है।

(२) अजमेर-मेरवाड़ा—इसकी राजधानी अजमेर है।

(३) ब्रिटिश बिलोचिस्तान—इसकी राजधानी क्वेटा है।

(४) कुर्ग—यह भी एक छोटा प्रान्त है।

(५) अंडमनटापू—यह टापू बंगाल की खाड़ी में है। भारतवर्ष से काले पानी की सजा पाये हुए लोग यहाँ भेजे जाते हैं। पोर्ट ब्लेयर में यहाँ के हाकिम रहते हैं।

उन्नीसवाँ अध्याय

गार्हस्थ्य-जीवन

कुटुम्ब का स्वरूप—हमारे देश में कुटुम्ब-प्रथा बहुत पुरानी है। आर्य लोग जब हमारे देश में आये तब वे अलग-अलग कुटुम्बों में रहते थे। हरएक कुटुम्ब का शासन उसका बड़ा-बूढ़ा करता था। वही देवताओं की पूजा करता था। वही यज्ञ आदि भी करता था। घर के सब लोग उसकी आज्ञा मानते थे।

२५ वर्ष तक आर्य सांसारिक झगड़ों से दूर रह कर विद्योपार्जन करते थे। उसके बाद विवाह करने की आज्ञा थी। प्रायः प्रत्येक पुरुष केवल एक स्त्री से विवाह करता था। विवाह करके परिवार में रहने और अपनी जीविका चलाने को गार्हस्थ्य-जीवन में प्रवेश करना कहते थे।

एक परिवार में प्रायः कई आदमी होते थे। स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चे, भाई-बहन, माता-पिता, सब एक परिवार में रहते थे। वंश पिता के नाम से चलता था।

आज हज़ारों वर्ष से हमारे कुटुम्ब का यही रूप चला आ रहा है।

हिन्दू कुटुम्ब में कई लोग होते हैं, इसलिए घर का जो बड़ा-बूढ़ा होता है, वही मालिक होता है। सब उसकी आज्ञा मानते हैं। घर के सारे इन्तज़ाम के लिए वही ज़िम्मेवार होता है। घर-गृहस्थी की सारी चिन्ता उसी के सिर होती है। घर में यदि और लोग भी कमाने वाले हों तो वह सब कमाई उसके पास ही जमा होती है। वही गृहस्थी का ख़र्च चलाता है। वही शादी-विवाह आदि के सारे मामलों के लिए ज़िम्मेवार होता है। उसकी आज्ञा के बिना कोई काम नहीं होता।

माता-पिता, भाई-बहन, नाती-पोते, सब एक ही घर में रहते हैं। सब का एक ही चौका होता है। एक ही देवता की पूजा करते हैं। एक का सुख सब का सुख होता है। एक का दुःख सब का दुःख होता है।

अतएव एक आदर्श हिन्दू परिवार से हमें यह उपदेश मिलता है कि समाज की व्यवस्था कैसी होनी चाहिए।

हिन्दू कुटुम्ब में पिता के नाम से वंश चलता है। यद्यपि दक्खिन में मालाबार प्रान्त में कुछ ऐसे कुटुम्ब हैं, जहाँ माता का वंश चलता (माता जिस वंश की होगी, उस वंश की ही उसकी सन्तान मानी जायगी), परन्तु हिन्दू कुटुम्ब में ऐसा नहीं होता।

यहाँ पिता के नाम से वंश चलता है। पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति का अधिकारी होता है। यदि पुत्र न हो तो सबसे नजदीकी पुरुष-रिश्तेदार सम्पत्ति का हिस्सेदार माना जाता है।

लड़की का जब विवाह हो जाता है तो वह दूसरे घर की हो जाती है। अर्थात् पिता के वंश से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वह अपने पति के परिवार की हो जाती है। पिता की सम्पत्ति में वह तभी अधिकारिणी बनती है, जब पिता के कोई पुत्र-सन्तान न हो।

कुटुम्ब में नारी का स्थान—अकसर घर के भीतर जो बड़ी-बूढ़ी औरत होती है उसी का हुकुम चलता है। पुरुष जैसे बाहर के मामलों के लिए जिम्मेवार होता है, वैसे ही जेठी स्त्री भीतर का प्रबन्ध सँभालती है। घर-गृहस्थी के मामलों में हमेशा उसकी राय ली जाती है। वह जो कुछ कहती है, प्रायः वही होता है। किस दिन क्या तरकारी बनेगी, क्या दाल बनेगी, त्यौहार के दिन क्या-क्या पकवान बनेंगे, किस मामले में कितना खर्च होना चाहिए, किस के लिए क्या कपड़ा चाहिए, क्या गहना चाहिए, यह सब वही तय करती है। शादी में, ग़मी में, तिथि और त्यौहार में उसीका हुकुम चलता है।

प्राचीन समय में हमारे देश में स्त्री का बड़ा सम्मान किया जाता था। उसे देवी आदि शब्दों से सम्बोधित करते थे। मनु

ने तो यहाँ तक कहा है कि जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं।

हमारे यहाँ नारी को गृहिणी कहा गया है। गृहिणी का अर्थ है जो घर का काम सँभाले। इस अर्थ में हिन्दू घर की नारी आज भी गृहिणी है। वह घर का सब काम सँभालती है। परन्तु नारी का उतना सम्मान हमारे देश में अब नहीं होता। उनके प्रति हम अच्छा व्यवहार नहीं करते।

हिन्दू स्त्री स्वभाव से ही घर के पुरुषों का बहुत ध्यान रखती है। घर-गृहस्थी की जितनी चिन्ता पुरुष को होती है, स्त्री को उससे कम नहीं होती। कुछ हालतों में तो स्त्री को पुरुष से अधिक काम करना पड़ता है।

यदि देखा जाय तो हमारे घरों की स्त्रियां सुबह से लेकर आधीरात तक घर-गृहस्थी का काम सँभालने में ही लगी रहती हैं। आराम करने का उनको तनिक भी वक्त नहीं मिलता। भोजन बनाना, घर-गृहस्थी का काम सँभालना, बच्चों की देख-रेख करना—इसी में उनका सारा वक्त चला जाता है।

घर की मालकिन निरंकुश शासक होती है। जो वह चाहती है वही होता है। चूंकि घर के पुरुष इनकी इच्छा के विरुद्ध जाना पसन्द नहीं करते, इसलिये वे इनके कामों में बहुत कम हस्तक्षेप करते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि

घर की जो मालकिन होती है, वह बहुधा घर की अन्य स्त्रियों पर अनुचित शासन करती है और उनको सुविधा का कोई ध्यान नहीं रखती। उनसे अधिक परिश्रम भी लेती है।

सम्मिलित परिवार—इन सब बातों के होते हुए भी परिवार में सम्मिलित होकर रहने से आर्थिक उन्नति में एक दूसरे से बड़ी सहायता मिलती है। देहातों में तुमने देखा होगा, स्त्रियाँ बाहर का सब काम करती हैं। वे खेत पर जाती हैं, बोझा ढोती हैं। लकड़ी काट कर लाती हैं। मज़दूरी करती हैं। मतलब यह कि पुरुष जितना काम करते हैं, उतना ही स्त्रियाँ भी करती हैं। पुरुष भी कमाते हैं और स्त्रियाँ भी। शहरों में तथा उच्च जाति के बड़े आदमियों में, ऐसा नहीं होता। परन्तु फिर भी घर के जो लोग होते हैं, वे सभी कुछ न कुछ करते हैं।

सम्मिलित परिवार में रहने का दूसरा लाभ यह है कि घर की सम्पत्ति नष्ट होने से बची रहती है। घर के बड़े-बूढ़े की मृत्यु के बाद यदि उसके लड़के सम्पत्ति का परस्पर बँटवारा कर लें तो हर एक के हिस्से में सम्पत्ति का थोड़ा ही हिस्सा पड़ेगा और नतीजा यह होगा कि वह जल्दी नष्ट हो जायगी। परन्तु सम्मिलित परिवार में सब लोग सम्पत्ति की रक्षा का समान प्रयत्न करते रहते हैं, क्योंकि सब उसे अपना समझते हैं।

उसके बाद सम्मिलित परिवार में रहने से परस्पर प्रेम, दया, करुणा, सहानुभूति आदि अच्छे गुणों का विकास होता है। सहयोग से रहने, और परस्पर की सहायता करने की आदत पड़ती है। क्योंकि परिवार में सहयोग से रहने की सबसे बड़ी जरूरत होती है।

फिर सम्मिलित होकर रहने से, रोग में, दुःख में, शोक में, और वृद्धावस्था में बड़ी मदद मिलती है। सम्मिलित परिवार विधवाओं और अनाथों का तो एक प्रकार से आश्रय-दाता ही है।

साथ ही सम्मिलित परिवार की हानियाँ भी बहुत सी हैं।

सम्मिलित परिवार की प्रथा बेकारी की पोषक है। अक्सर ऐसे कुटुम्ब हैं जहाँ केवल एक आदमी मेहनत करके कमाता है, और बाकी मुफ़्त का खाते हैं।

फिर सम्मिलित परिवार में रहने वाले लोग घर छोड़कर बाहर जाना पसन्द नहीं करते। इसलिए जीवन-क्षेत्र में वे आगे नहीं बढ़ पाते। देहात में अक्सर लोग गरीबी में दिन बिताते हैं, परन्तु वे नये काम-धन्धे की खोज में घर से बाहर जाना पसन्द नहीं करते।

फिर सम्मिलित परिवार में रहने से सबसे बड़ी हानि यह है कि मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता। घर में जितने छोटे आदमी होते हैं उन्हें हर मामले में बड़ों का रुख देखकर चलना पड़ता है। उन्हें हमेशा इस बात का डर

लगा रहता है कि उनसे जो बड़े हैं, वे नाराज़ न हो जायँ। इसलिए यदि वे कोई काम करना भी चाहते हैं, तो नहीं कर पाते। इस प्रकार व्यक्तित्व के विकास में यह प्रथा बड़ी बाधा पहुँचाती है। मनुष्य जो बनना चाहता है वह नहीं बन पाता।

सम्मिलित परिवार में घर के छोटे लोगों को अकसर ही अपनी इच्छा का त्याग करना पड़ता है। त्याग करना अच्छी चीज़ है। परन्तु अनुचित रूप से यदि त्याग करना पड़े और मन में, जिस वस्तु का त्याग किया गया है उसकी प्राप्ति की इच्छा बनी रहे, तो इससे बड़ी हानि होती है। अनेक घरों में इसी वजह से फूट पड़ जाती है। जो पुरुष कमाता है उसकी बात हर मामले में चलती है। भीतर उसकी स्त्री हुकूमत करती है। उसे बहुधा इस बात का अभिमान रहता है कि उसका पति कमाता है। वह स्वयम् अच्छा खाती-पीती और पहनती है। परन्तु घर की दूसरी स्त्रियों की वह कोई चिन्ता नहीं करती, यद्यपि उन पर शासन करना ज़रूरी समझती है।

परन्तु सम्मिलित परिवार की यह प्रथा अब नष्ट होती जा रही है। लोगों की आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ रही हैं। इसलिए देहात और क़स्बे के लोग जीविका के लिए घर छोड़ कर बाहर जाने लगे हैं।

इसके अलावा पढ़े-लिखे नवयुवकों में अब घर से स्वतन्त्र होकर रहने की इच्छा बढ़ती जा रही है। ये लोग अपनी स्त्री और बच्चों को घर में माता-पिता के पास रखने की बजाय अपने पास रखना ज्यादा पसन्द करने लगे हैं। इसलिए जहाँ वे जीविका करते हैं, वहीं अपने परिवार को ले जाते हैं।

इस दृष्टि से यदि पूछा जाय तो परिवार की प्रथा नष्ट नहीं हो रही है। सिर्फ एक परिवार की बजाय दो या अधिक छोटे-छोटे परिवार बने जा रहे हैं। और यह भी तभी सम्भव होता है जब कि घर में दूसरे कमाने वाले हों। क्योंकि कोई अपनी स्त्री को अपने घर से अलग ले जाकर भी [illegible] घर के मुखिया की मृत्यु के बाद उसे कुटुम्ब के बाकी लोगों को अपने पास ही रखना पड़ेगा। यह ठीक भी है। हमारे देश में अभी यह सम्भव नहीं है कि एक कुटुम्ब [illegible] लोगों की ममता छोड़कर बिलकुल ही अलग हो। [illegible] की दृष्टि से यह उचित भी नहीं है। इसलिए हमारे देश में, बजाय इसके कि परिवार की प्रथा को नष्ट होने दिया जाय, उसमें सुधार करना ज्यादा अच्छा होगा।

विवाह का उद्देश्य—विवाह हमारे [illegible] माना गया है। प्रत्येक मनुष्य के लिए विवाह [illegible] यदि न हो तो सन्तान कहाँ से हो? [illegible]

मोक्ष (उन्नत अवस्था की प्राप्ति) नहीं होती। इसलिए सन्तान उत्पन्न करने के लिए विवाह करना चाहिए। यह हमारे धर्म-ग्रन्थों का मत है। पुत्र चाहे अविवाहित रह जाय, परन्तु कन्या का विवाह हुए बिना काम नहीं चल सकता।

यह विवाह का आध्यात्मिक उद्देश्य हुआ। परन्तु विवाह का और भी उद्देश्य है। वह उद्देश्य है गृहस्थ-जीवन में प्रवेश कर के सांसारिक उन्नति करना; विवाह करके अपना घर-बार बनाना; जीवन के लिए अपना साथी चुनना। क्योंकि मनुष्य इस साथी के बिना रह नहीं सकता। और कामों की तरह विवाह का यह कार्य भी घर के बड़े-बूढ़ों के ही जिम्मे है। वे लोग कन्या के लिए योग्य वर ढूँढ़ते हैं, और पुत्र के लिए योग्य वधू।

विवाह के सम्बन्ध में कई प्रतिबन्ध हैं। अव्वल तो विवाह जाति के भीतर ही हो सकता है। हिन्दुओं में जाति के बाहर विवाह करने की प्रथा अभी नहीं के बराबर है।

दूसरे, विवाह एक गोत्र में नहीं होता। यदि कन्या और वर के कुल का गोत्र एक है तो विवाह नहीं हो सकता। फिर, विवाह के इस मामले में कन्या या पुत्र को स्वयम् अपनी राय देने का कोई अधिकार नहीं है। कन्या स्वयम् अपने लिए न तो वर ही ढूँढ़ सकती है और न पुत्र अपने लिए वधू ही। यह काम माता-पिता ही करते हैं। इस प्रथा को कुछ लोग अच्छा समझते हैं,

कुछ बुरा। युरोप के देशों में विवाह के मामले में लड़के और लड़की बिलकुल स्वतन्त्र होते हैं। वे अपनी इच्छा के अनुसार जिसके साथ चाहते हैं विवाह करते हैं। प्राचीन काल में हमारे देश में भी यह प्रथा प्रचलित थी। इसे स्वयम्वर कहते थे, क्योंकि लड़की स्वयम् अपना वर चुनती थी।

अब कुछ लोग तो यह कहते हैं कि लड़का-लड़की चूँकि अपना साथी चुनने में ग़लती कर सकते हैं, इसलिए विवाह का यह कार्य माता-पिता के हाथ में ही रहना चाहिए। परन्तु कुछ यह कहते हैं कि लड़के या लड़की को विवाह के मामले में पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। परन्तु यह हिन्दू संस्कृति के बहुत अनुकूल नहीं है। इसलिए अच्छा तो यह हो कि शिक्षित और वयस्क होने पर ही सन्तान का विवाह किया जाय, और उस वक्त उनकी पूरी राय इस मामले में ली जाय।

बाल-विवाह—असल में बाल-विवाह की प्रथा की वजह से ही हमारे देश में माता-पिता को कन्या और पुत्र के विवाह की सारी ज़िम्मेवारी अपने ऊपर लेनी पड़ती है। अन्यथा बड़े होने पर यदि विवाह किया जाय तो इस मामले में कन्या या पुत्र की राय निस्संकोच ली जा सकती है।

हिन्दुओं में बाल-विवाह की प्रथा बहुत दिन से प्रचलित है। एक वर्ष के दुधमुँहे बच्चों तक की शादी कर दी जाती है।

इससे हमारे देश में बाल-विधवाओं की संख्या बहुत बढ़ गयी है। स्वास्थ्य का नाश भी हुआ है। इसके अलावा तुम जानते हो, आज-कल लोगों की आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं। आसानी से अब नौकरी नहीं मिलती। इसलिए जब तक जीविका का प्रबन्ध न हो जाय, विवाह करना दिक़्क़त को बढ़ाना है। हमारे देश के सभी समाज-सुधारक इस प्रथा को हटाने का प्रयत्न करते आये हैं। परन्तु आख़िर में इसके लिए सरकार को क़ानून बनाना पड़ा। इस क़ानून का नाम शारदा बिल है।

हिन्दू समाज में पुरुष एक से अधिक विवाह कर सकता है। परन्तु यह प्रथा अब बन्द हो चली है। बड़े ताल्लुक़ेदार या राजा लोग ही अब एक से अधिक विवाह करते हैं।

स्त्री के लिए एक ही विवाह की व्यवस्था है। उसके दो पति नहीं हो सकते।

पुरुष अपनी एक पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरा विवाह कर सकता है। परन्तु स्त्री अपने पति की मृत्यु के बाद दूसरा विवाह नहीं कर सकती। उसे आजीवन विधवा होकर रहना पड़ता है।

हिन्दू-समाज की इस प्रथा से हानि तो हो ही रही है, परन्तु यह मनुष्यता के सिद्धान्त के बहुत ख़िलाफ़ भी है। स्त्री हो या पुरुष, जीवन-पथ पर चलने के लिए उसे अपना एक साथी

चाहिए। पुरुप तो अपना साथी फिर से चुन सके, परन्तु स्त्री ऐसा न कर सके. यह तो सचमुच उसके साथ अत्याचार है।

हिन्दू समाज में विधवाओं की दशा बडी शोचनीय है। उनको आजीवन दुःख भोगना पड़ता है। पति की मृत्यु के बाद ससुराल और मायके में भी उसकी कोई वक़त नहीं रहती। सभी कोई उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं। न उसे ठीक खाने को मिलता है, न पहनने को। उनकी यह दशा पुनर्विवाह से ही सुधर सकती है। परन्तु समाज अब भी इसके लिए काफ़ी तैयार नहीं है।

भारतवर्ष में कितनी अधिक विधवाएँ हैं, यह तुम्हें नीचे के आँकडों से विदित होगा। यह संख्या १ वर्ष से १५ वर्ष तक की बाल-विधवाओं की है। विधवाओं की इस संख्या के लिए बाल-विवाह की प्रथा ही जिम्मेवार है।

अवस्था	विधवाएँ
०—१ वर्ष	१,५१५
१—२ ,,	१,७८५
२—३ ,,	३,४८५
३—४ ,,	९,०७९
४—५ ,,	१५,०१९
५—१० ,,	१,०५,४८२
१०—१५ ,,	१,८५,३३९

अनमेल विवाह—व्याह समवयस्क में ही होना चाहिए। अर्थात् लड़के और लड़की की उम्र एक-सी हो। दोनों एक-से स्वस्थ और गुणवान् हों। परन्तु हमारे यहाँ अक्सर देखा गया है कि साठ वर्ष के बूढ़े वर के साथ पाँच वर्ष की अबोध और अनजान लड़की की गाँठ बाँध दी जाती है। एक स्वस्थ और पढ़ी-लिखी लड़की के गले एक रोगी और मूर्ख लड़का मढ़ दिया जाता है। परन्तु यह कुरीति धीरे-धीरे दूर हो रही है। अब समाज इसे बुरा समझने लगा है।

दहेज-प्रथा—विवाह के अवसर पर कन्या का पिता वर-पक्ष को जो कुछ देता है, वह दहेज कहलाता है। परन्तु दहेज कितना दिया जाय, कैसा दिया जाय, क्या दिया जाय, इसका निश्चय वर-पक्ष के लोग करते हैं। वर-पक्ष के लोग जो कुछ माँगते हैं, कन्या-पक्ष के लोगों को दहेज में वही देना पड़ता है, अन्यथा विवाह नहीं हो सकता। यह एक प्रकार से लड़के को बेचना हुआ। लड़के का पिता मनमाने दाम माँगता है। लड़की के पिता को मजबूर होकर वही देना पड़ता है। क्योंकि लड़की को क्वाँरी नहीं रक्खा जा सकता। इस प्रथा की वजह से ग़रीबों को बड़ी असुविधा होती है। लड़की का होना उनके लिए मौत है।

इसलिए इस कुप्रथा को क़ानून द्वारा रोकने की तजवीज हो रही है। परन्तु क़ानून से कुछ अधिक लाभ नहीं होगा। क्योंकि

जिन्हें दहेज लेना या देना है वे चुपचाप यह काम मजे में कर सकते हैं। दहेज दिया गया या नहीं, यह साबित होना कठिन है। इसके अलावा लड़की का पिता यदि चाहे तो दहेज देने से उसे रोका भी नहीं जा सकता। कन्या के विवाह के मामले में वह यह नहीं कहेगा कि दहेज उसने ख़ुशी से नहीं दिया।

हमारे देश की विवाह की प्रथा तो बड़ी अच्छी है, परन्तु उसमें इसी प्रकार की अनेक कुरीतियाँ घुस गयी हैं। उन्हें दूर करने की बड़ी आवश्यकता है। विवाह में व्यर्थ ही धन और समय का नाश किया जाता है। बड़ी-बड़ी बारातें जाती हैं। कई रोज़ तक खाना-पीना होता है। शोर-ग़ुल होता है। पड़ोस में यदि विवाह हो तो फिर आफ़त ही आ जाती है।

यह सब यदि बन्द हो जाय तो बड़ा अच्छा हो। सरकार क़ानून बना दे कि एक नियत संख्या से अधिक लोग बारात में न जायँ, कोई धूम-धाम न हो, कोई प्रदर्शन न हो, व्यर्थ का ख़र्च न हो। बारात एक-दो दिन से अधिक न रहे। ऐसा क़ानून यदि बन जाय तो उससे ग़रीब जनता का बड़ा हित हो।

परदा—हमारे समाज में परदे की प्रथा का भी बुरा चलन है। यह प्रथा हमारे प्रान्त में और मारवाड़ तथा राजपूताने में ही प्रचलित है। या फिर थोड़ी-बहुत बंगाल में। पंजाब में इसका नाम नहीं। महाराष्ट्र और गुजरात में भी इसका चलन नहीं।

स्त्रियाँ दिन-रात घरों में बन्द रहती हैं। उन्हें बाहर की खुली हवा नहीं मिल पाती। यदि वे कहीं जाती भी हैं तो घूँघट काढ़ कर। परदे की यह प्रथा शहरों में ही अधिक प्रचलित है। वहाँ औसत दर्जे के घरों की स्त्रियों को बहुधा तंग और सीलदार मकानों में रहना पड़ता है, इसलिए परदे की वजह से उनके स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है। साथ ही वे दुनिया का कुछ ज्ञान भी प्राप्त नहीं कर पातीं। शहर की स्त्रियों में क्षयी रोग जो इतना बढ़ रहा है, उसका एक सबब परदे की प्रथा ही है।

देहातों में यह प्रथा नहीं के बराबर है। सन्तोष की बात है कि शहरों में भी यह प्रथा कम हो रही है। क्योंकि हमारे देश की स्त्रियाँ अब शिक्षित हो रही हैं और लोग परदे की हानियों से परिचित हो चले हैं। मुसलमानों में परदा अधिक है।

हमारे समाज में स्त्रियों का स्थान अब दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। स्त्रियाँ शिक्षित हो रही हैं और घर से बाहर निकल कर समाज-सेवा के कामों में भाग ले रहीं हैं। यहाँ तक कि हमारे प्रान्त के एक मन्त्री के पद पर आजकल एक महिला ही हैं। परन्तु स्त्रियों को उचित अधिकार अभी नहीं मिले हैं। क़ानून में उन्हें अपने पिता और अपने पति की सम्पत्ति में हिस्सा लेने का अधिकार नहीं है।

तलाक़ और विवाह-विच्छेद—हिन्दू स्त्री को अपने पति को, चाहे वह जितना अयोग्य और नालायक़ हो, तलाक़ देने का अधिकार नहीं है। हिन्दू समाज में विवाह एक पवित्र वन्धन है। मृत्यु के बाद ही वह टूट सकता है। उसके पहले स्त्री या पुरुष एक दूसरे को छोड़ नहीं सकते। यह प्रथा अच्छी नहीं है। विवाह का उद्देश्य है जीवन को सुखी बनाना। परन्तु किसी स्त्री का पति यदि दुष्ट हो, नालायक़ हो, रोगी हो तो ऐसे पति को लेकर वह सुखी कैसे रह सकती है ? तलाक़ की प्रथा मुसलमानों में प्रचलित है। पच्छिम के देशों में भी इसका प्रचार है।

स्त्रियों को तलाक का क़ानूनी अधिकार मिलना चाहिए। इसके लिए देश में आन्दोलन हो रहा है और श्री देशमुख नाम के एक नेता ने केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में इस सम्बन्ध में एक बिल पेश किया है।

हमारे समाज में कन्या के बजाय पुत्र का ज्यादा महत्त्व है। पुत्र से वंश चलता है, और कुटुम्ब के पालन-पोषण में सहायता भी मिलती है। इसलिए पुत्र के उत्पन्न होने पर जो खुशी मनायी जाती है, वह कन्या के उत्पन्न होने पर नहीं मनायी जाती। बल्कि कुछ घरों में तो कन्या का जन्म होने से मातम-सा छा जाता है।

कन्या का महत्त्व इसलिए इतना नहीं है कि उसका विवाह करना पड़ता है। विवाह के बाद वह दूसरे के घर चली जाती है।

परन्तु पुत्र घर पर ही रहता है। उससे गृहस्थी के कामों में मदद मिलती है। शिक्षित समाज में यद्यपि ऐसा नहीं होता, परन्तु साधारण हिन्दू घरों में कन्या की ज्यादा परवा नहीं की जाती। पुत्र को पढ़ाया-लिखाया जाता है। उसके खाने-पीने की फ़िक्र की जाती है। परन्तु कन्या को कोई विशेप ख़बर नहीं ली जाती। उसे शुरू से पराये घर की चीज़ समझ लिया जाता है। यह बुरा है।

पिता का जो धर्म होता है, वही पुत्र या कन्या का भी होता है। एक ही जाति होती है। हिन्दू परिवार में यह सम्भव नहीं है कि पिता यदि हिन्दू हो तो पुत्र सिक्ख या जैन। परिवार से अलग होकर ही वह ऐसा वन सकता है।

नौकर-चाकर—यहाँ हम उन नौकरों के सम्बन्ध में भी कुछ कहना चाहते हैं जो हमारे घरों में काम करते हैं। शहर के मध्यम श्रेणी के और ऊँचे वर्ग के लोगों में ही नौकर रखने का रिवाज है। देहातों में नौकरों की कम जरूरत पड़ती है। वहाँ लोग अधिकांश काम अपने हाथ से कर लेते हैं। परन्तु शहर में जहाँ हर स्थान एक दूसरे से वहुत दूर होता है, घर के मालिक को और काम भी रहते हैं, नौकर के विना काम नहीं चलता।

इन घरों में छोटे वालकों से लेकर अधेड़ अवस्था के स्त्री-पुरुष तक नौकरी करते हैं। इनको वेतन तो ठीक दिया जाता है, परन्तु काम वहुत अधिक लिया जाता है। अकसर उन्हें सुवह से लेकर

रात के आठ-दस बजे तक काम में लगे रहना पड़ता है। घर के सभी आदमियों का हुकुम उन्हें मानना पड़ता है। सभी की ख़ुशामद उन्हें करनी पड़ती है। उनको थोड़ा भी अवकाश नहीं दिया जाता।

इसके अतिरिक्त इतवार की छुट्टी तो दूर रही. तीज-त्यौहार मनाने की छुट्टी भी उन्हें मुश्किल से मिलती है। बल्कि त्यौहार के दिन तो उनके सिर काम का बोझा और भी बढ़ जाता है।

उनसे हम सब तरह का काम लेते हैं। परन्तु उनकी सुविधा का ख्याल कभी नहीं रखते। उनके प्रति हमारी विशेष सहानुभूति नहीं होती। उनके बीमार पड़ जाने की चिन्ता हमें केवल इसलिए होती है कि हमारा काम उनके बिना रुक जाता है। अन्यथा हम उनकी कभी परवा न करें।

नौकरों के प्रति हमारा व्यवहार भी अक्सर ठीक नहीं होता। हम उन्हें बात-बात में झिड़कते हैं। बात-बात में उनसे ग़ुस्सा होते हैं। हमारे गार्हस्थ्य जीवन की और भी कई बातें ऐसी हैं जिनकी ओर हमारा ध्यान जाना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, हमारे यहाँ स्त्रियाँ दिन-रात काम-धन्धे में लगी रहती हैं। उन्हें किसी और काम की फ़ुर्सत ही नहीं मिलती। इसका नतीजा यह होता है कि वे बात-बात में अपने बच्चों से खीझती और उन पर अपना ग़ुस्सा उतारती हैं। हमारे यहाँ प्रायः सभी घरों में बच्चों को मारने पीटने की जो आदत है, वह बुरी है।

बीसवाँ अध्याय

हमारा सामाजिक जीवन

जाति-व्यवस्था—हमारे देश में कई धर्मों के लोग रहते हैं—हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, सिक्ख, जैन, बौद्ध। इनमें से अधिकांश के रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। हिन्दुओं का धर्म अलग है। मुसलमानों का अलग। पारसियों का धर्म अलग है। ईसाइयों का अलग। इनमें किसी प्रकार का सामाजिक सम्बन्ध नहीं है।

इनमें से अधिकांश की फिर अनेक जातियाँ और उपजातियाँ हैं। इनके कितने ही सम्प्रदाय और फ़िरक़े हैं।

इन सम्प्रदायों में भी बड़ा भेद है। एक के रीति-रिवाज दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। एक का धर्म दूसरे से बिलकुल अलग है।

यह बात हिन्दुओं में ही अधिक है। हिन्दू जाति अनेक छोटे-छोटे भागों में बँटी हुई है। ये भाग एक दूसरे से इतने

अलग हैं कि एक का दूसरे के घर में घुसना असम्भव है। पड़ोस के कुछ लोग जिस तरह एक दूसरे से नाराज होकर अपने घरों के बीच में ऊँची-ऊँची दीवारें खड़ी कर लें, वैसी ही दीवारें इनके बीच में खड़ी हैं। एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं।

ये भाग और कुछ नहीं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जातियाँ हैं। हिन्दुओं की ये खास पहचान हैं। इस प्रकार की जाति-व्यवस्था दुनिया की और किसी जाति में नहीं है। हिन्दुओं की इन चार मुख्य जातियों को चार वर्ण कहते हैं।

वर्ण-व्यवस्था की उन्नति कैसे हुई, यह कहना कठिन है। परन्तु यह मानी हुई बात है कि इसका असली उद्देश्य कर्म के अनुसार समाज को भिन्न-भिन्न श्रेणियों में बाँटना और इस प्रकार समाज का सगठन करना था।

समाज में सब प्रकार के लोग होते हैं। उनका पेशा भी अलग-अलग होता है। कोई पढ़ता-पढ़ाता है, तो कोई सिपहगरी पसन्द करता है। कोई व्यापार करता है, तो किसी को खेती-बारी पसन्द होती है। इनको संगठित करने की जरूरत होती है, ताकि सब लोग अपने-अपने काम में तरक्की कर सकें। वर्ण-व्यवस्था का यही उद्देश्य था। जो लोग पूजा-पाठ करते थे, यज्ञ और जप करते थे, पढ़ते-पढ़ाते थे, उनको एक अलग श्रेणी में बाँट दिया गया। यह श्रेणी ब्राह्मण कहलायी। जो

सिपहगरी का काम करते, धर्म और देश की रक्षा करते, वे क्षत्रिय कहलाये। जो खेती और व्यापार करते थे, वे वैश्य कहलाये। और समाज के हित के लिए जो लोग अन्य छोटे-छोटे पेशे करते थे, वे शूद्र कहलाये। किस आदमी में कैसे गुण हैं, किस आदमी की रुचि किस काम में अधिक है, समाज को इस बात का बहुत ख्याल रहता था। यदि किसी आदमी में ब्राह्मण धर्म के लक्षण नज़र आते थे तो उसे ब्राह्मण बना दिया जाता था। यदि किसी में वैश्य के लक्षण नज़र आते थे तो उसे वैश्य धर्म की दीक्षा दी जाती थी। मतलब यह कि जन्म से कोई ब्राह्मण या वैश्य, या छत्रिय नहीं होता था, ठीक उसी तरह जैसे आजकल कोई जन्म से ही वकील, डाक्टर, या वैद्य नहीं हो जाता।

परन्तु पिछले कई हज़ार वर्ष के भीतर हिन्दू समाज की दशा बिलकुल बदल गयी है। वर्णाश्रम धर्म के असली मतलब को लोग भूल गये हैं। उसमें अनेक दोष आ गये हैं। अब तो जो जिस जाति में रहता है, उसे जिन्दगी भर उसी जाति में रहना पड़ता है, फिर चाहे उसके कर्म कैसे ही हों। वैश्य का लड़का जिन्दगी भर ही वैश्य रहता है। फिर चाहे वह कोई भी काम करता हो। और ब्राह्मण यदि वैश्य बनने का प्रयत्न करे, या वैश्य यदि ब्राह्मण बनना चाहे तो यह उसके लिए असम्भव है। यदि वह ऐसा करे भी, तो वह कहीं का भी नहीं रहता। उसे हमेशा के लिए

जाति से अलग कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई ब्राह्मण-युवक किसी वैश्य-युवती से विवाह कर ले तो वह युवक न तो ब्राह्मण रहता है और न वह युवती वैश्य-कन्या। उन दोनों को ही जाति से बाहर कर दिया जाता है। जाति-बहिष्कार हो जाने पर खान-पान और विवाह का फिर उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा जाता।

परन्तु पहले जमाने में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों जातियों में रोटी-बेटी का सम्बन्ध था। क्षत्रिय वैश्य-कन्या से विवाह कर सकता था। वैश्य क्षत्रिय से विवाह कर सकता था। एक वर्ण के लोगों को दूसरे वर्ण में प्रवेश करने की पूरी स्वतन्त्रता थी।

हरिजन—परन्तु हमारे समाज में केवल चार वर्ण ही नहीं हैं। इनकी अनेक जातियाँ और उपजातियाँ भी हो गयी हैं। आपस में उनका कोई और सामाजिक सम्बन्ध भी नहीं होता। वैश्यों और क्षत्रियों में यही बात है। इसके अतिरिक्त हमारे समाज में एक ऐसा समुदाय है जिसे अछूत कहते हैं। समाज में उनको घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। वे अन्त्यज समझे जाते हैं। उनका छुआ कोई पानी नहीं पीता। गाँव के कुएँ से उनको पानी नहीं भरने दिया जाता। उनको स्कूल में पढ़ने नहीं दिया जाता। भगवान के दर्शन के लिए उनको मन्दिर में नहीं जाने दिया जाता।

कहीं-कहीं तो उनको सड़कों पर भी नहीं चलने दिया जाता। दक्खिन के कछ स्थानों में तो अछूत की छाया से भी परहेज किया जाता है। अछूत के सामने ब्राह्मण जल ग्रहण नहीं करेगा। इस प्रकार उनको मनुष्य नहीं समझा जाता। यह बात दुनिया में और कहीं नहीं है। मनुष्य के साथ मनुष्य ऐसा व्यवहार कहीं नहीं करता। इन अछूतों की संख्या हमारे देश में सन् ३१ की मनुष्य-गणना के अनुसार कुल मिलाकर ५ करोड़ थी।

इन ५ करोड़ व्यक्तियों को हिन्दू समाज ने अपने से अलग कर रक्खा है। अछूत असल में हिन्दू ही हैं। और यदि ये फिर हिन्दू-समाज में मिला लिये जायँ तो उससे हमारी शक्ति सचमुच बहुत बढ़ जायगी।

पिछले कई वर्ष से देश में अछूतोद्धार के प्रयत्न हो रहे हैं। गान्धीजी ने तो इनके लिए अपना जीवन दे रक्खा है। वे इन्हें अछूत न कह कर हरिजन कहते हैं। उनका कहना है कि भगवान के ये लोग ही सच्चे जन (सेवक) हैं। क्योंकि जो मनुष्य की सेवा करे, वही भगवान का सेवक है।

गान्धीजी के प्रयत्न से अछूतों का सुधार हो रहा है। उनके लिए स्कूल खुल गये हैं। उनकी आर्थिक और सामाजिक उन्नति के प्रयत्न हो रहे हैं। हमारी काँग्रेस सरकार इनकी उन्नति के लिए बड़ा प्रयत्न कर रही है।

जाति-भेद से हिन्दू समाज को बड़ी हानि पहुँची है। समाज कई भागों में विभक्त हो गया है। छोटे-बड़े के भाव फैल गये हैं। लोग एक दूसरे से घृणा करने लग गये हैं। ब्राह्मण अपने को शूद्र से हर बात में बड़ा समझता है। शूद्र हर बात में अपने को ब्राह्मण से ओछा। इससे मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में भी बाधा होती है। केवल एक शूद्र के घर में जन्म लेने से ही आदमी जन्म भर शूद्र बना रहे और मनुष्य न होकर जीवन भर शूद्र कहलाये, यह कहाँ का न्याय है? फिर उसका परिचय भी इसी नाम से दिया जाय यह तो सामाजिक अत्याचार ही है।

इतना ही नहीं, जाति-भेद से हमारी सामाजिक और राज-नैतिक उन्नति में भी बड़ी बाधा पहुँच रही है। समाज में जो अनेक दोष आ गये हैं, वे अधिकांश में जाति-भेद से ही उत्पन्न हुए हैं। तरह-तरह के रीति-रिवाज, विधि और निषेध, क़ायदा और क़ानून—ये सब जाति-भेद से ही आये हैं। इस प्रकार हमारा समाज रूढ़ियों से चारों तरफ से जकड़ा हुआ है। हर जगह हमारे यहाँ धर्म मौजूद है। हम अपने हर कृत्य का समर्थन उसे धार्मिक कह कर करते हैं। परन्तु अब समाज में परिवर्त्तन हो रहा है। लोग शिक्षित हो रहे हैं। समाज की दासता की जंजीरें टूट रही हैं। समाज-सुधार के अनेक क़ानून बन रहे हैं और उन्नति के लिए बड़ा प्रयत्न हो रहा है।

इक्कीसवाँ अध्याय

सामाजिक और राजनैतिक उन्नति

हिन्दुओं का विश्वास है कि जब-जब धर्म की हानि होती है, पृथिवी पर जब-जब अधर्म और अनाचार बढ़ता है, तब अनाचार का नाश करने और धर्म की प्रतिष्ठा के लिए भगवान अवतार लेते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, भगवान कृष्ण, भगवान बुद्ध ऐसे ही अवतार माने जाते हैं। हिन्दू समाज के धार्मिक विचारों पर इन सब की अमिट छाप है। चैतन्य, कबीर, गुरु नानक, तुलसीदास आदि ने भी हिन्दुओं के जीवन को बहुत प्रभावित किया हैं। इसी प्रकार और भी अनेक महापुरुष हुए जिन्होंने समय-समय पर हिन्दुओं की विचार-धारा बदली और अनेक सामाजिक सुधार किये। यहाँ उन सब का वर्णन नहीं दिया जा सकता। परन्तु पिछले डेढ़-दो सौ वर्षों में समाज-सुधार के उद्देश्य से जो मुख्य आन्दोलन हुए हैं, उनका जिक्र हम यहाँ करते हैं।

अँगरेज़ी शिक्षा का प्रभाव—अँगरेज़ों ने भारत में आकर अपना राज्य ही स्थापित नहीं किया, वल्कि अपने देश की सभ्यता और संस्कृति से उन्होंने हमारे देश के पढ़े-लिखे लोगों को प्रभावित करना भी शुरू किया। अँगरेज़ी शिक्षा और युरोपियन लोगों के सम्पर्क में आने से हिन्दुओं में नये विचार पैदा हुए। उन्होंने अपने धर्म और रीति-रिवाजों की छान-वीन शुरू की। इधर ईसाई मिशनरी अपने धर्म का प्रचार करने में लगे थे। वे हिन्दुओं को ईसाई धर्म का उपदेश देते थे और उनको ईसाई वनाने का प्रयत्न करते थे। यह देखकर हिन्दू-और मुसलमान दोनों ही चौकन्ने हुए। ख़ास कर हिन्दुओं ने देखा कि उनका धर्म खतरे में है और यदि शीघ्र कोई प्रयत्न नहीं किया जायगा तो समाज का वड़ा नुक़सान होगा।

राजा राममोहनराय—सवसे पहले राजा राममोहनराय का ध्यान इस तरफ़ आकृष्ट हुआ। उनका जन्म सन् १७७२ ई० में वंगाल में हुआ था। जव वह १६ वर्ष के ही थे, तभी उन्होंने मूर्त्ति-पूजा के विरुद्ध वंगला-भाषा में एक छोटी किताव लिखी। उनके विचार विलकुल नये थे, और वे अँगरेज़ी शिक्षा से वहुत प्रभावित हुए थे। परन्तु उन्होंने देखा कि लोग नये विचारों से भड़कते हैं। इसलिए पूरव और पच्छिम के अच्छे-अच्छे विचारों को लेकर उन्होंने एक नयी सुधार-संस्था की स्थापना की। इस

संस्था का नाम ब्रह्म-समाज है। इसमें ईसाई और हिन्दू दोनों धर्मों के सिद्धान्तों की छाया है। इस संस्था ने काफ़ी हद तक बंगाल के पढ़े-लिखे हिन्दुओं को ईसाई होने से बचाया।

इसके बाद राजा राममोहनराय ने समाज-सुधार की तरफ़ ध्यान दिया। उन्होंने जो सबसे पहला कार्य किया, वह था सती-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन। उनके इस आन्दोलन से हिन्दुओं में इतना विरोध उठ खड़ा हुआ कि लोग उनकी जान लेने को तैयार हो गये। परन्तु वे अपने मार्ग पर निर्भीकतापूर्वक अटल रहे। सती प्रथा के विरुद्ध उन्होंने और भी जोरदार आवाज़ उठायी, जिसका नतीजा यह हुआ कि सन् १८२९ ई० में अँगरेज़ सरकार को सती-प्रथा रोकने के लिए क़ानून बनाना पड़ा।

राजा राममोहनराय शायद पहले हिन्दू थे जिन्होंने विधवा-विवाह का आग्रह किया। जाति-भेद के विरुद्ध भी उन्होंने अपनी आवाज उठायी थी।

देवेन्द्रनाथ और केशवचन्द्र सेन—राजा राममोहनराय की मृत्यु के बाद ब्रह्म-समाज के दो प्रमुख नेता हुए। एक तो महर्षि देवेन्द्रनाथ और दूसरे केशवचन्द्र सेन। इन्होंने अपने ब्रह्म समाज के प्रचार में बड़ा उत्साह दिखाया। परन्तु सिद्धान्तों को लेकर इन दोनो में मत-भेद हो गया। इसलिए ब्रह्म-समाज के दो भाग हो गये।

केशवचन्द्र सेन सच्चे प्रचारक थे। उन्होंने मद्रास, बम्बई आदि स्थानों में ब्रह्म-समाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया, और प्रार्थना समाज के नाम से एक नया समाज स्थापित किया।

स्वामी दयानन्द—परन्तु आम जनता पर ब्रह्म समाज का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। शिक्षित लोग ही उसके प्रति अधिक आकृष्ट हुए। क्योंकि एक तो वह शुद्ध आर्य-धर्म नहीं था, दूसरे फिर लोगों में इतनी विचार-स्वतन्त्रता नहीं थी कि एक ऐसे धर्म के प्रति आकृष्ट होते जिसकी नींव पच्छिम के विचारों को लेकर डाली गयी थी। इसी समय स्वामी दयानन्द का जन्म हुआ। वह स्वयम् अँगरेज़ी नहीं पढ़े थे। परन्तु संस्कृत के विद्वान थे। उन्होंने देखा कि इस देश के लिए तो प्राचीन आर्य-धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। इसलिए उन्होंने आर्य समाज की स्थापना करके आर्य-धर्म का प्रचार शुरू किया। उनके उपदेशों का जनता पर तुरन्त ही असर पड़ा।

इनका जन्म सन् १८२४ में गुजरात में हुआ था। इनके पिता सनातनधर्मी थे। परन्तु स्वामी दयानन्द बचपन से ही मूर्तिपूजा के विरोधी हो गये। इन्होंने वैदिक धर्म के उद्धार में अपनी सारी शक्ति लगा दी। इन्होंने विधवा-विवाह का समर्थन किया। स्त्री-शिक्षा की आवाज़ उठायी। बाल-विवाह और अनमेल विवाह का घोर विरोध किया। अछूतों के ये सच्चे

शुभ-चिन्तक थे। छुआछूत और जाति-भेद को दूर करने का इन्होंने बहुत प्रयत्न किया। इनकी मृत्यु के बाद आर्य-समाज शीघ्र ही देश की एक प्रमुख संस्था बन गयी। देश में उसने एक नयी जागृति पैदा की। उसमें अनेक प्रसिद्ध व्यक्ति हुए जिन्होंने समाज और देश की बड़ी सेवा की। लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज जैसे व्यक्ति आर्य समाज में ही हुए।

थियोसाफ़िकल सोसाइटी—इसी समय के लगभग थियोसाफ़िकल सोसाइटी की स्थापना हुई जो सब धर्मों को सत्य मानती है और मनुष्य-मात्र में भ्रातृ-प्रेम और सहिष्णुता का उपदेश देती है। श्रीमती बिसेन्ट ने इसका विशेष प्रचार किया।

धार्मिक विचारों का सर्वत्र प्रचार होते देख पुराने विचार के हिन्दू भी संगठन करने लगे और उन्होंने जगह-जगह सनातन-धर्म सभाएँ स्थापित कीं। हिन्दुओं में रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विशुद्धानन्द आदि कई महात्मा हुए। बंगाल में रामकृष्ण परमहंस ने एक नया धार्मिक आन्दोलन चलाया, परन्तु ब्रह्म समाज की तरह बंगाल ही इसका प्रमुख कार्य-क्षेत्र रहा।

स्वामी रामकृष्ण—स्वामी रामकृष्ण का जन्म सन् १८३४ में हुआ था। उन्होंने वेदान्त धर्म का प्रचार किया। उनकी संस्था का नाम रामकृष्ण मिशन है। स्वामी विवेकानन्द परमहंस रामकृष्ण के शिष्य थे। इन्होंने और स्वामी रामतीर्थ ने हिन्दू-धर्म

के मूल तत्त्वों का प्रचार किया और युरोप, अमेरिका, जापान आदि देशों में जाकर लोगों को हिन्दू-धर्म का महत्त्व समझाया।

परन्तु हमारे देश में ऐसे भी समाज-सुधारक हुए हैं जिन्होंने किसी मिशन या समाज की स्थापना नहीं की, फिर भी समाज-सुधार सम्बन्धी बड़ा काम किया। इनमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महादेवगोविन्द रानाडे, पंडिता रमाबाई, गोपालकृष्ण गोखले, सर सैयद अहमद ख़ाँ प्रमुख हैं। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर बंगाल में हुए। इन्होंने विधवा-विवाह के प्रचार के लिए बड़ा प्रयत्न किया।

महादेव गोविन्द रानाडे—महादेव गोविन्द रानाडे महाराष्ट्र में हुए। इनका जन्म सन् १८४२ में नासिक में हुआ था। ये जज थे। राजा राममोहन राय ने जो कार्य बंगाल में किया, वही कार्य रानाडे ने पच्छिमी भारत में। उन्होंने विधवा-विवाह-सभा नाम की एक संस्था क़ायम की जिसका उद्देश्य विधवा-विवाह का प्रचार करना था। इसके अलावा उन्होंने समाज-सुधार-सम्बन्धी अनेक कार्य किये। कई सार्वजनिक संस्थाएँ क़ायम कीं। शिक्षा-प्रचार के लिए उन्होंने एक संस्था खोली, जिसने महाराष्ट्र में बड़ा कार्य किया। इनकी पत्नी पंडिता रमाबाई भी पति की भाँति ही प्रसिद्ध समाज-सुधारक हुई हैं। स्त्री-शिक्षा के प्रचार में उन्होंने बड़ा काम किया।

सर सैयद अहमद ख़ाँ—यह मुसलमानों के एक प्रसिद्ध नेता हुए हैं। इन्होंने मुसलमानों में शिक्षा-प्रचार के उद्देश्य से अलीगढ़ में एक कालिज क़ायम किया जो अब युनिवर्सिटी हो गया है।

गोपालकृष्ण गोखले—गोपालकृष्ण गोखले रानाडे के शिष्य थे। परन्तु उनका ध्यान सामाजिक सुधारों की तरफ़ उतना न होकर राजनैतिक सुधारों की तरफ़ अधिक था। गोपालकृष्ण गोखले देश के सच्चे हितैषी थे। देश के लिए उन्होंने बड़ा काम किया। देश-सेवा के उद्देश्य से उन्होंने सन् १९०५ में सर्वेन्ट्स आव इन्डिया सुसाइटी नाम की एक संस्था क़ायम की, जिसका पहला उद्देश्य था सार्वजनिक जीवन को उन्नत बनाना। किसी प्रकार का सामाजिक या राजनैतिक कार्य करना इस संस्था का उद्देश्य नहीं था। बल्कि इसका उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों को पैदा करना था, जो किसी विशेष दल के लिए काम न करके सार्वजनिक सेवा के लिए अपने को उत्सर्ग कर दें। इस सभा के सबसे पहले सभापति गोखले थे। फिर श्रीनिवास शास्त्री हुए। आजकल हृदयनाथ कुंजरू हैं।

मदनमोहन मालवीय—पंडित मदनमोहन मालवीय हिन्दुओं के प्रमुख नेता हैं। वे सच्चे सनातनधर्मी हैं और उनके नाम से सभी परिचित हैं। उन्होंने बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी की

स्थापना की है। यह देश में अपने ढंग की प्रमुख शिक्षा-संस्था है। प्रान्त के सामाजिक जीवन पर इस संस्था का बड़ा असर पड़ा है।

महात्मा गान्धी—गान्धीजी को देश का प्रत्येक बालक जानता है। उन्होंने अपने त्याग और तप के बल से देश की काया पलट दी है। देश की राजनैतिक और सामाजिक अवस्था पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा है। पिछले बीस वर्षों में देश की जो राजनैतिक उन्नति हुई है, वह उनकी ही तपस्या का फल है।

गान्धीजी अछूतोद्धार-आन्दोलन के प्राण हैं। उनके आन्दोलन की वजह से ही अछूतों के प्रति लोगों का रुख बदला है।

गान्धीजी सब को अहिंसा का उपदेश देते हैं। खद्दर पहनने को कहते हैं। अछूतों के साथ बराबरी का व्यवहार करने का आग्रह करते हैं। उनकी शिक्षा का यही सार है।

गान्धीजी का पूरा नाम मोहनदास करमचन्द गान्धी है। उनका जन्म सन् १८६९ में गुजरात के एक वैश्य कुल में हुआ। वे पहले बैरिस्टर थे। परन्तु देश के लिए उन्होंने सब कुछ त्याग दिया है। सन् १९२१ ई० में उन्होंने अपना प्रसिद्ध असहयोग आन्दोलन अँग्रेज सरकार के खिलाफ़ चलाया जिसके लिए उन्हें जेल जाना पड़ा था। इसके बाद १९३० ई० में नमक-कर के खिलाफ़ आन्दोलन किया। खद्दर का प्रचार,

अछूतोद्धार, शिक्षा, और शराबबन्दी उनके आन्दोलन के प्रमुख अंग हैं।

वर्त्तमान समय में समाज-सुधार सम्बन्धी जितने आन्दोलन हुए, उनमें अछूतोद्धार का एक विशेष स्थान है। गान्धीजी के प्रयत्न से अछूतों का दर्जा समाज में बढ़ गया है। उनके साथ बराबरी का व्यवहार होने लगा है और उनकी उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है।

इस बीच में बाल-विवाह की प्रथा को रोकने के जो प्रयत्न हुए उनका ज़िक्र आवश्यक है। इस विषय में कुछ देशी राज्यों में बड़ा काम हुआ है। हमारे यहाँ सन् १८६० के भारतीय दंड विधान के अनुसार विवाह के लिए उम्र की क़ैद १० वर्ष थी। अर्थात् उस वक़्त १० साल से कम उम्र के लड़के की कोई शादी नहीं कर सकता था। परन्तु इस क़ानून को कभी अमल में नहीं लाया जाता था। सन् १८९२ में उम्र की यह क़ैद १० से १२ हो गयी, और सन १९२५ में १२ से १३ हो गयी।

परन्तु मैसूर राज्य इस मामले में प्रगतिशील साबित हुआ। वहाँ सन् १८९४ से क़ानून बना है जिसके अनुसार १४ वर्ष से कम और ५० वर्ष से ज्यादा उम्र के व्यक्ति की शादी नहीं हो सकती।

इसी प्रकार बड़ौदा राज्य में भी विवाह के लिए लड़की की अवस्था कम से कम १४ वर्ष और लड़के की १६ वर्ष नियत है। यह क़ानून वहाँ १९०४ में बना।

ब्रिटिश भारत में बाल-विवाह को रोकने के लिए सन् १९२५ में ही ठीक क़ानून बना। यह क़ानून सारदा-बिल के नाम से प्रसिद्ध है। क्योंकि यह अजमेर के प्रसिद्ध समाज-सुधारक श्री हरविलास सारदा के प्रयत्न से पास हुआ। इसके अनुसार लड़के की उम्र यदि १८ वर्ष से कम या लड़की की १४ वर्ष से कम हो तो शादी नहीं हो सकती। परन्तु इस क़ानून में कई ऐसे दोष थे कि इससे बालविवाह को रोकने में बहुत मदद नहीं मिली। इसलिए सन् १९३८ में इस बिल में फिर से आवश्यक संशोधन किये गये हैं। उसे अब बहुत सख़्त बना दिया गया है।

शिक्षा के सम्बन्ध में हमारे देश में यद्यपि पिछले सौ वर्ष में काफ़ी उन्नति हुई है, परन्तु दूसरे देशों के मुकाबले में वह नहीं के बराबर है। पिछली मनुष्य-गणना के अनुसार हमारे देश में पढ़े-लिखे मनुष्यों की संख्या हज़ार पीछे ७२ और स्त्रियों की १८ है। प्रतिशत के हिसाब से यह क्रमशः ७.२ और १.८ हुई। परन्तु युरोप, अमेरिका, जापान आदि उन्नत देशों में ७५ से लेकर ९० प्रतिशत व्यक्ति पढ़े-लिखे हैं।

शिक्षा की इस कमी की ओर कांग्रेस सरकार का ध्यान अब विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। सभी प्रान्तों में शिक्षा-प्रचार का आन्दोलन चल रहा है। साथ ही अब तक प्राइमरी स्कूलों में जो शिक्षा दी जाती थी, उसका रूप भी बदला जा रहा है। देश के लिए प्रारम्भिक शिक्षा का रूप क्या हो, इस पर विचार करने के लिए एक कमेटी हमारे देश के नेताओं ने बनायी थी। उस कमेटी ने इस सम्बन्ध में अपनी एक रिपोर्ट पेश की। वह रिपोर्ट वर्धा स्कीम के नाम से है। क्योंकि कमेटी की बैठक वर्धा में हुई थी, जहाँ गान्धीजी का आश्रम है।

इस कमेटी की सिफ़ारिश के अनुसार अब ऐसी शिक्षा का प्रचार हो रहा है, जिससे लड़कों को केवल किताबें नहीं रटनी पड़ेंगी, बल्कि उनके शारीरिक और मानसिक विकास की तरफ़ भी पूरा ध्यान दिया जायगा। अन्य विषयों के साथ उन्हें तरह तरह के कला-कौशल, चित्रकारी, बढ़ईगिरी, काग़ज़ और मिट्टी के खिलौने बनाना, काग़ज़ बनाना, सूत कातना, कपड़ा बुनना, आदि विषयों की भी शिक्षा दी जायगी।

यह आशा की जाती है कि इस शिक्षा से लड़कों में काम-धन्धा करने की भावना पैदा होगी और देश की बेकारी को दूर करने में उससे मदद मिलेगी। क्योंकि अभी तक शिक्षा की जो प्रणाली रही है, उससे लड़कों को अपने जीवन की समस्या हल

करने में, जीविका आदि के उपार्जन में ज़्यादा मदद नहीं मिलती थी। स्कूल या कालिज से बाहर निकल कर लड़के नौकरी ही तलाश करते हैं। क्योंकि और किसी काम के करने योग्य वे होते नहीं।

परन्तु अब इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि लड़के जीवन में कर्म का महत्व समझें। पढ़ने का उद्देश्य नौकरी नहीं है, बल्कि अपना विकास करना है। यह नयी शिक्षा-प्रणाली इसी आदर्श को लेकर चलेगी।

अँगरेज़ी राज्य में हमारे देश की जैसी चाहिए थी वैसी उन्नति नहीं हुई। न तो शिक्षा का व्यापक प्रचार ही हुआ, और न देश की आर्थिक दशा ही सुधरी। फिर भी हमें यह मानना पड़ेगा कि हमारी जो कुछ भी वर्त्तमान उन्नति हुई है, वह सब अँगरेज़ी शिक्षा का फल है। अँगरेज़ी शिक्षा के प्रभाव से हमारे देश में नवीन विचारों का प्रचार हुआ। साहित्य, कला और विज्ञान की विशेष उन्नति हुई। लोगों में नये ढंग से सोचने और विचारने की शक्ति आयी। बाल गङ्गाधर तिलक, और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे राजनीतज्ञ अँगरेज़ी शिक्षा के ही फल हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे महाकवि, गान्धी जैसे महापुरुष, जवाहरलाल जैसे राजनीतज्ञ, और मदनमोहन मालवीय जैसे देश-भक्त हमें अँगरेज़ी शिक्षा के प्रभाव से ही मिले हैं।

अँगरेज एक स्वतन्त्र देश के निवासी हैं। वहाँ प्रजातन्त्र राज्य स्थापित है। इसलिए उनके सम्पर्क में आकर हमारे देश में स्वतन्त्रता के विचार जाग्रत हुए। हमको अपनी पराधीनता का ज्ञान हुआ। इसके पहले हमारे देश में धर्म को ही अधिक महत्त्व दिया जाता था। मोक्ष-प्राप्ति ही मनुष्य का एक-मात्र ध्येय था। इसलिए मनुष्य सदैव आत्मोन्नति का ही प्रयत्न करता था और उसमें ही अपना सारा समय लगाता था। परन्तु अँगरेजों के आने से हमारे देश में राष्ट्रीयता के भाव फैले। अपने राष्ट्र की तरफ़ हमारा ध्यान गया। हमें मालूम हुआ कि देश के प्रति भी हमारे कुछ कर्तव्य हैं। देश हमारा है, और हम देश के हैं। राष्ट्रीयता की यह भावना अँगरेजी राज्य की सब से बड़ी देन है। उसके लिए हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

———

बाईसवाँ अध्याय

देश की राजनैतिक प्रगति

कॉंग्रेस—भारत में जब से अँगरेज़ी राज्य क़ायम हुआ, तब से ही भारतीय जनता स्वराज्य-प्राप्ति का आन्दोलन कर रही है। भारतवासियों का कहना है कि भारत हमारा देश है। इसलिए उसका शासन हमारे द्वारा ही होना चाहिए, न कि अँगरेज़ों के द्वारा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न दल के लोग विभिन्न उपाय काम में लाते रहे हैं। इनमें से एक दल ऐसे लोगों का था जो अशान्तिपूर्ण उपायों द्वारा अँगरेज़ों को इस देश से निकालने का प्रयत्न करता रहा है। परन्तु दूसरे दल का उद्देश्य शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा सरकार से शासन-सुधार की माँग करना और हिन्दुस्तानियों के हितों की रक्षा का उचित प्रयत्न करना रहा है। इस दूसरे दल के कुछ लोगों ने सन् १८८५ ई० में इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस नाम से एक संस्था क़ायम की। इसे संक्षेप में कॉंग्रेस कहते हैं। देश का ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो इसका नाम न जानता हो।

कांग्रेस देश की सबसे प्रबल राजनैतिक संस्था है। देश के लाखों-करोड़ों व्यक्तियों की वह प्रतिनिधि सभा है। उसमें सभी धर्मों के लोग शामिल हैं।

शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना ही कांग्रेस का उद्देश्य है। वह वैध उपायों द्वारा ही स्वराज्य प्राप्त करना चाहती है। क्योंकि कांग्रेस के जो सबसे बड़ा नेता गान्धी जी हैं, वे शान्ति और अहिंसा के सबसे बड़े पुजारी हैं।

कांग्रेस के जन्मदाताओं में दादाभाई नौरोजी, मिस्टर ए० ओ० ह्यूम, श्री उमेशचन्द्र बनर्जी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये लोग देश के सच्चे हितैषी और सेवक थे।

इस सभा का पहला अधिवेशन २७ दिसम्बर सन् १८८५ में बम्बई नगर में हुआ। उस वक्त सभा में देश के विभिन्न भागों से कुल मिलाकर ७२ प्रतिनिधि शामिल हुए थे। परन्तु अब इस सभा का इतना महत्त्व बढ़ गया है कि अभी पारसाल काँग्रेस का जो अधिवेशन हुआ, उसमें लाखों व्यक्ति इकट्ठे हुए थे।

१८८६ ई० में इस सभा का दूसरा अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। उसके सभापति दादाभाई नौरोजी थे। तीसरा अधिवेशन सन् १८८७ में मदरास में हुआ। इस प्रकार हर वर्ष उसके अधि-वेशन होते रहे। उस समय इस सभा का उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना नहीं था। इसमें सरकारी, गैर-सरकारी सभी लोग

शामिल होते थे। परन्तु धीरे-धीरे काँग्रेस की नीति बदलती गयी। उसमें दो दल हो गये। एक नरम दल दूसरा गरम दल। गरम दल के लोगों के विचार उग्र थे। वे सरकार के कार्यों की खुल्लमखुल्ला आलोचना करते थे और स्पष्ट शब्दों में स्वराज्य की माँग पेश करते थे। नरम दल के लोगों को यह पसन्द नहीं था। इसलिए वे कांग्रेस से अलग हो गये।

सन् १९१९ का गवर्नमेन्ट आफ़ इण्डिया ऐक्ट—जनता को सन्तुष्ट करने के लिए सन् १९१९ ई० में सरकार ने एक क़ानून बना कर शासन में सुधार किये। यह क़ानून गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया ऐक्ट सन् १९१९ के नाम से मशहूर है। इस ऐक्ट में भारत मन्त्री की सभा, वाइसराय की व्यवस्थापिका सभा, और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं, म्युनिसिपैलिटियों, और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में प्रजा के प्रतिनिधियों के अधिकार बढ़ाये गये। हिन्दुस्तान के शासन में अँगरेज सरकार का हस्तक्षेप कम हो गया।

इस क़ानून के मुताबिक़ वाइसराय की व्यवस्थापिका (क़ानून बनाने वाली) सभा के दो भाग हो गये। एक तो लैजिस्लेटिव ऐसेम्बली और दूसरा काउन्सिल आफ़ स्टेट। इन सभाओं के सदस्यों की संख्या बढ़ गयी। उनमें आधे से अधिक मैम्बरों के चुनने का अधिकार प्रजा को दिया गया। इसी प्रकार वाइसराय

की प्रबन्धकारिणी सभा के मैम्बरों की संख्या भी बढ़ा दी गयी। इस सभा के मैम्बरों की संख्या समय-समय पर बदलती रही है। पहले चार मैम्बर थे। फिर तीन कर दिये गये। सन् १९१९ ई० के बाद से इनकी संख्या आठ हो गयी। इसमें तीन मैम्बर भारतवासी रक्खे गये। शासन के विभिन्न भाग इन मैम्बरों के सुपुर्द हैं। वाइसराय इनकी सहायता से ही भारत का शासन करता है।

इस ऐक्ट के जारी होने से प्रान्तीय शासन का रूप ही बदल गया। अब प्रान्तों में एक प्रकार का दुहरा शासन स्थापित हो गया। शासन दो भागों में बँट गया। एक भाग तो रिज़र्व विभाग कहलाया और दूसरा ट्रान्सफ़र्ड या हस्तान्तरित विभाग। पहले भाग में अर्थ विभाग और पुलिस विभाग आदि रक्खे गये। इसका प्रबन्ध गवर्नर अपनी प्रबन्ध-कारिणी सभा की सहायता से करने लगा। दूसरे विभाग में शिक्षा, स्वास्थ्य आदि रक्खे गये। इनके प्रबन्ध के लिए मन्त्रियों की सृष्टि की गयी। ये मन्त्री व्यवस्थापिका सभा के उन मैम्बरों में से लिये गये जिनको प्रजा ने चुना था। प्रान्तीय गवर्नर इन मन्त्रियों की सहायता से हस्तान्तरित विभागों का प्रबन्ध करने लगा। ये मन्त्री एक प्रकार से गवर्नर के अधीन थे। क्योंकि गवर्नर जब चाहे उन्हें बरखास्त कर सकता था। मन्त्री लोग अपनी

इच्छा के अनुसार काम करने के लिए स्वतन्त्र नहीं थे। उन्हें प्रायः हर मामले में गवर्नर की मर्ज़ी के मुताबिक़ ही चलना पड़ता था। सन् १९१९ ई० के शासन-सुधारों का यह बड़ा भारी दोष था। वे नाम-मात्र के ही शासन-सुधार थे। जनता को इनसे कोई वास्तविक लाभ नहीं हुआ। काउन्सिलों में जनता के प्रतिनिधियों की संख्या ज़रूर बढ़ गयी। प्रजा द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों में से मन्त्रियों की नियुक्ति भी हो गयी। परन्तु जनता के शासन-सम्बन्धी कुछ अधिकार नहीं बढ़े।

असहयोग आन्दोलन—ऐसी दशा में कांग्रेस भला शासन-सुधारों का समर्थन कैसे कर सकती थी। इन सुधारों का कांग्रेस ने विरोध किया। तब सरकार ने दमनकारी क़ानूनों द्वारा उसे कुचल देना चाहा। नतीजा यह हुआ कि कांग्रेस ने सरकार के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा कर दी और अपना प्रसिद्ध असहयोग आन्दोलन चलाया। महात्मा गान्धी इस आन्दोलन के प्रमुख नेता थे। देश में चारों तरफ़ असहयोग आन्दोलन फैल गया। काउन्सिलों का बायकाट होने लगा। स्कूलों और कालिजों से लड़के अलग होने लगे। सरकारी अदालतों का भी बायकाट होने लगा। दूसरी तरफ़ शराब-बन्दी और अछूतों के भेद-भाव को उठाने का आन्दोलन भी जारी था। हज़ारों आदमी इस आन्दोलन में जेल गये और उन्होंने वहाँ की कठिन यन्त्रणाएँ

भुगतीं। आन्दोलन शायद सफल हो जाता, परन्तु दो-एक ऐसी घटनाएँ हो गयीं जिनकी वजह से गान्धीजी ने आन्दोलन सहसा बन्द कर दिया।

साइमन कमिशन और नेहरू कमिटी की रिपोर्ट—इसके बाद शासन-सुधार के लिए कांग्रेस की माँग बराबर बढ़ती गयी। तब अँगरेजी सरकार ने सुधार के विषय पर विचार करने के लिए साइमन कमिशन नियुक्त किया। इस कमिशन के सब सदस्य अँगरेज थे। हिन्दुस्तानियों को उसमें कोई स्थान नहीं दिया गया था। इसलिए सभी दल के लोगों ने इसका बायकाट किया। इसी समय भारत-मन्त्री ने भारतवासियों को संकेत करते हुए कहा कि वे शासन-सुधार तो माँगते हैं, परन्तु अब तक यह नहीं बता सके हैं कि सुधार किस प्रकार के हों। इस पर दिल्ली में सब दलों के नेताओं की एक कान्फ्रेन्स हुई और भारत के भावी शासन की रूप-रेखा तैयार करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की गयी। इस कमिटी के प्रधान स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू बनाये गये। इसलिए यह नेहरू कमिटी के नाम से प्रसिद्ध है। इस कमिटी की रिपोर्ट अगस्त १९२८ ई० में प्रकाशित हुई। उसमें भारत के भावी शासन का एक स्वरूप निश्चित किया गया, और ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग पेश की गयी।

उस वक्त लार्ड अर्विन वाइसराय थे। वे कांग्रेस को यह विश्वास नहीं दिला सके कि नेहरू कमिटी की रिपोर्ट के अनुसार शीघ्र औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जायगा। उन्होंने यह बात जरूर कही कि ब्रिटिश सरकार ने इस प्रकार का स्वराज्य देने का विचार किया है। कांग्रेस के नेताओं को इससे सन्तोष नहीं हुआ। पंडित मोतीलाल नेहरू, और गान्धीजी लार्ड अर्विन से मिले। परन्तु उसका कोई नतीजा नहीं निकला। अब तक कांग्रेस ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर रह कर शासन के पूरे अधिकार चाहती थी, परन्तु अब उसने पूर्ण स्वराज्य लेने की घोषणा कर दी। और फिर से बायकाट और सत्याग्रह का आन्दोलन छेड़ दिया।

क़ानून भंग आन्दोलन और गोल मेज़ कान्फ्रेन्स—इस बार आन्दोलन ने बड़ा जोर पकड़ा। इसका श्रीगणेश स्वयम् गान्धीजी ने किया। ता० १२ मार्च सन् १९३० ई० को नमक-क़ानून तोड़ने के लिए उन्होंने दंडी की पैदल यात्रा की। उनकी यह यात्रा इतिहास में सदैव अमर रहेगी। क़ानून-भंग का यह आन्दोलन सारे उत्तर भारत में तेजी से फैल गया। जेलें सत्याग्रहियों से भर गयीं। ऐसा मालूम होने लगा कि ब्रिटिश सरकार का तख्त उलट जायगा। इसके बाद ही साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इसके अनुसार लन्दन में एक

कान्फ्रेन्स होने की घोषणा वाइसराय ने की। यह गोलमेज़ कान्फ्रेन्स के नाम से मशहूर है। परन्तु कांग्रेस ने साइमन कमिशन की रिपोर्ट का पूरा विरोध किया और जब सन् १९३० ई० में कान्फ्रेन्स की पहली बैठक हुई तो उसमें कांग्रेस का कोई नेता शामिल नहीं हुआ, यद्यपि दूसरे दलों के लोग उसमें शामिल हुए। इस कान्फ्रेन्स में भारतवर्ष में संघ-शासन स्थापित करने का प्रस्ताव पास हुआ, जिसे सरकार ने भी स्वीकार कर लिया।

इधर देश की हालत चूँकि बहुत नाजुक होती जा रही थी, इसलिए लार्ड अर्विन और देश के कुछ नेताओं के प्रयत्न से गान्धीजी और भारत सरकार के बीच समझौता हो गया। यह समझौता गान्धी-अर्विन समझौते के नाम से मशहूर है। इसके अनुसार राष्ट्रीय क़ैदी जेल से छोड़ दिये गये और गान्धीजी दूसरी गोलमेज़ सभा में विलायत गये। परन्तु कुछ निबटारा नहीं हो सका और सत्याग्रह आन्दोलन चलता रहा। गान्धीजी को लन्दन से वापिस आते ही जेल भेज दिया गया।

तीसरी गोलमेज़ सभा—तीसरी गोलमेज़ सभा सन् १९३२ ई० में हुई। कांग्रेस के नेताओं ने उसमें कोई भाग नहीं लिया। आख़िर कान्फ्रेन्स की सिफ़ारिशों के अनुसार मार्च सन् १९३३ ई० में भारत को उत्तरदायी शासन देने के सम्बन्ध में मसविदा

छप कर तैयार हुआ। इसे ह्वाईट पेपर कहते हैं। सन् १९३५ ई० में यह मसविदा पार्लियामेन्ट से पास हुआ। इसके अनुसार शासन-प्रणाली में परिवर्त्तन करना तय हो गया। पहली एप्रिल सन् १९३७ ई० से इस ऐक्ट के अनुसार ही कार्य हो रहा है।

नया शासन-सुधार—इस ऐक्ट के अनुसार जनता को शासन में अधिक अधिकार मिल गये हैं। प्रान्तों में एक प्रकार का स्थानीय स्वराज्य क़ायम हो गया है। शासन-सभाओं (काउन्सिल) में जनता द्वारा चुने हुए सदस्य अधिक संख्या में पहुँच गये हैं। इनमें से देश के ८ सूबों में काँग्रेस का प्राधान्य है।

संघ-शासन—इन नये शासन-सुधारों के अनुसार भारत के लिए संघ-शासन की व्यवस्था की गयी है। अर्थात् सारे प्रान्त अलग-अलग अपना शासन-प्रबन्ध करेंगे। परन्तु उन सब को एक सूत्र में बाँध रखने के लिए एक संघ-सरकार की स्थापना की जायगी। संघ-शासन में देशी रियासतें भी शामिल की जायँगी।

सूबों में नये शासन-सुधार जारी हो गये हैं। परन्तु अभी संघ-शासन की नींव नहीं पड़ी है।

संघ-शासन की व्यवस्था में कई स्वतन्त्र राज्य स्वयम् अपना संघ बनाते हैं। परन्तु इस नये ऐक्ट के मुताबिक़ संघ-शासन

हमारे देश पर जबरदस्ती लादा जा रहा है। जितने भी प्रान्त हैं वे स्वतन्त्र नहीं हैं। वल्कि अभी अँगरेज़ी सरकार के अधीन काम कर रहे हैं। ऐसी दशा में देशी रियासतों के साथ प्रान्तों का कोई समझौता नहीं हो सकता। क्योंकि देशी राज्य ख़ुद-मुख्तयार हैं। इसके अतिरिक्त प्रान्तों के और देशी रियासतों के अधिकार एक से नहीं हैं। इसलिए जो नया संघ-शासन क़ायम होगा, उसके साथ रियासतों और ब्रिटिश भारत के प्रान्तों का एक-सा सम्मानजनक समझौता नहीं हो सकता। देशी रियासतें अभी स्वयम् इसके लिए तैयार नहीं हैं। वे डर रही हैं कि संघ-शासन की अधीनता स्वीकार कर लेने से कहीं उनकी स्वतन्त्रता में वाधा न पड़ जाय। और फिर कांग्रेस भी इस चीज़ को पसन्द नहीं कर रही है। इसलिए संघ-शासन अभी स्थापित नहीं हो पा रहा है। केन्द्रीय शासन की व्यवस्था अभी सन् १९१९ ई० के ऐक्ट के मुताविक़ ही चल रही है। जब तक संघ-शासन क़ायम नहीं हो जाता, वह इसी प्रकार रहेगी।

इन शासन-सुधारों के अनुसार जब काउन्सिलों का चुनाव हुआ, तो जनता के सामने यह समस्या आयी कि सुधार स्वीकार कर के काउन्सिलों में जाया जाय या नहीं। कुछ लोग काउन्सिलों में जाने के खिलाफ़ थे। उनका कहना था कि हमें मन्त्री आदि बनने के लोभ में न पड़ना चाहिए, वल्कि

काउन्सिलों का वहिष्कार करके पूर्ण स्वराज्य-प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

परन्तु काँग्रेस के अधिकाँश नेता काउन्सिलों में जाने के पक्ष में थे। उनका कहना था कि काउन्सिलों में जाकर यदि हम चाहें तो जनता का बड़ा हित कर सकते हैं।

इसलिए नये शासन-सुधारों के अनुसार प्रान्त की शासन [sabh]ाओं के लिए जब चुनाव हुआ तो सब प्रान्तों में काँग्रेस की ओर से उम्मेदवार खड़े किये गये।

काँग्रेस के खिलाफ़ जो पार्टियाँ हैं उनके उम्मेदवार भी खड़े हुए। परन्तु अधिकांश प्रान्तों में काँग्रेस की जीत हुई।

प्रान्तीय स्वराज्य—सन् १९१९ ई० के ऐक्ट के अनुसार प्रान्तों में जो दुहरा शासन क़ायम था, उसमें केन्द्रीय सरकार का प्रान्त के मन्त्रियों पर पूरा नियन्त्रण रहता था, और प्रान्त का गवर्नर वाइसराय के आदेशानुसार प्रान्त का शासन-प्रबन्ध करता था। परन्तु नये शासन-सुधारों के अनुसार केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के कार्यक्षेत्र स्पष्ट रूप से बाँट दिये गये हैं। और वाइसराय की प्रबन्धकारिणी और व्यवस्थापिका सभाएँ प्रान्त की सभाओं के उन मामलों में, जिनसे उनका सम्बन्ध नहीं है, कोई हस्तक्षेप नहीं करतीं।

शासन गवर्नर के नाम से ही होता है। शासन के हर मामले के लिए वही जिम्मेवार है। ऐक्ट के अनुसार गवर्नर को कुछेक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार भी है। परन्तु उन विषयों के अलावा जिन में उसे हस्तक्षेप करने का अधिकार है, वह मन्त्रियों की सम्मति और सहायता से ही हर एक काम करता है।

शासन-सम्बन्धी बड़ी किताबों में तुम पढ़ोगे कि शासन-व्यवस्था के तीन मुख्य अंग होते हैं :—

(१) प्रबन्धकारक अंग। इससे पुलिस, शिक्षा, व्यापार, स्वास्थ्य, कृषि आदि विभागों का प्रबन्ध होता है। इसे अँगरेज़ी में ऐकज़ीक्यूटिव कहते हैं।

(२) व्यवस्थापक अंग। यह अंग देश के लिए क़ानून बनता है। इसे अँगरेज़ी में लैजिस्लेचर कहते हैं।

(३) न्यायशासक अंग। इस अंग का काम न्याय का काम देखना है। फिर जो क़ानून बनते हैं उनका ठीक पालन हो रहा है या नहीं यह भी देखना है।

प्रबन्ध के लिए हमारे प्रान्त में ६ मन्त्रियों का एक मन्त्रि-मण्डल है। शासन के विभिन्न भाग इनके सुपुर्द हैं। प्रान्त का शासन-सूत्र इन मन्त्रियों के हाथ में है। हमारे प्रान्त के ये छहों मन्त्री कांग्रेस के प्रतिनिधि हैं।

एक के अधिकार में प्रान्त का भीतरी शासन है।

प्रान्त की आमदनी और ख़र्च के लिए बजट बनाना, रक्षा और अमन-अमान के लिए पुलिस का प्रबन्ध करना, तथा सारे प्रान्त के शासन की देख-भाल करना यह सब भीतरी शासन कहलाता है।

दूसरे के अधिकार में जेल और माल विभाग हैं।

तीसरे के अधिकार में सार्वजनिक उन्नति, न्याय विभाग और कृषि का प्रबन्ध है।

इसी प्रकार स्थानीय स्वराज्य और स्वास्थ्य-विभाग के लिए भी एक अलग मन्त्री है।

पाँचवें के अधिकार में शिक्षा-प्रसार और प्रचार का काम है।

छठा प्रान्त के रास्तों और आबपाशी के लिए नहरों का प्रबन्ध करता है।

इन मन्त्रियों की सहायता के लिए अलग-अलग सैक्रेटरी हैं। इन सैक्रेटरियों को पार्लियामेन्टरी सैक्रेटरी कहते है।

यह तो प्रबन्ध की बात हुई। इसी प्रकार क़ानून बनाने के लिए लैजिस्लेचर है।

लैजिस्लेचर में कुछ प्रान्तों में तो एक सभा है। कुछ में दो। बम्बई, मदरास, बिहार और आसाम में दो सभाएँ हैं। इनमें से एक को लैजिस्लेटिव काउन्सिल कहते हैं, दूसरी को

लैजिस्लेटिव ऐसेम्बली। हमारे प्रान्त में भी इसी तरह की दो सभाएँ हैं। दोनों में जनता द्वारा चुने हुए सभासद जाते हैं। फ़र्क इतना है कि लैजिस्लेटिव काउन्सिल बड़े आदमियों की सभा है। उसमें जो मैम्बर हैं वे ज़मींदार और पूँजीपति वर्ग से चुने गये हैं। लैजिस्लेटिव ऐसेम्बली में आम जनता में से चुने हुए व्यक्ति हैं। इसलिए एक को बड़ी और दूसरी को छोटी व्यवस्थापिका सभा भी कहते हैं। इस तरह की दो सभाएँ बनाने का उद्देश्य यह है कि सभी दलों के लोगों के हित सुरक्षित रहें और एक दल दूसरे दल वालों के हितों को अपने बहुमत से हानि न पहुँचा सके। ये दोनों सभाएँ क़ानून बनाती हैं।

किसी भी सम्बन्ध में जब कोई क़ानून बनाने की ज़रूरत समझी जाती है तो पहले उसका एक मसविदा तैयार किया जाता है। इस मसविदे को बिल कहते हैं। बिल बड़ी या छोटी दो में से किसी भी सभा में पेश हो सकता है।

परन्तु उसका दोनों सभाओं द्वारा पास होना ज़रूरी है और बिल जब दोनों सभाओं से पास हो जाता है तो उसके लिए गवर्नर की मंजूरी की ज़रूरत होती है। गवर्नर जब अपनी मंजूरी दे देता है तो वह क़ानून बन जाता है। मान लो छोटी सभा का कोई मेम्बर चाहता है कि एक इस तरह का क़ानून बनना चाहिए कि कारखानों में जो औरतें काम करती हैं वे जब गर्भ-

चती हों तो उनसे काम न लिया जाय, और जब तक वे छुट्टी पर रहें उन्हें पूरी तनख्वाह मिले। तो इस क़ानून का एक मसविदा तैयार होगा। फिर वह सभा के सामने पेश होगा। उस पर बहस होगी। बिल पास होना चाहिए या नहीं। उससे कुछ फ़ायदा होगा या नहीं। इन सारी बातों पर विचार होगा। बहस में अकसर काफ़ी समय लग जाता है। उसके बाद बिल जब बहुमत से सभा द्वारा स्वीकृत हो जाता है तो वह बड़ी सभा में जाता है। वहाँ भी उस पर बहस होती है और जब उस सभा से वह पास हो जाता है तो गवर्नर के पास जाता है। गवर्नर की मंजूरी के बाद वह क़ानून बन जाता है। गवर्नर की मंजूरी के बिना कोई बिल पास हुआ नहीं माना जाता।

कुछ ऐसे भी विषय हैं कि जिनके सम्बन्ध के बिल गवर्नर की मंजूरी के बिना काउन्सिलों में पेश ही नहीं हो सकते।

देश में जब से प्रान्तीय स्वराज्य स्थापित हो गया है, प्रान्तों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिए नये-नये क़ानून बन रहे हैं। विशेष कर उन प्रान्तों में जिनमें कांग्रेस-सरकार हैं, शिक्षा-प्रचार और गाँवों की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। युक्तप्रान्त में ही किसानों के हित के लिए कई बिल पेश हैं। इनमें से हक़ आराज़ी बिल बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके पास हो जाने पर किसानों का बहुत उपकार होने की आशा है।

तेईसवाँ अध्याय

देश की राजनैतिक प्रगति (२)

अन्य राजनैतिक संस्थाएँ और रियासतें—कांग्रेस हमारे देश की प्रमुख राजनैतिक संस्था है। इसका वर्णन हम कर चुके हैं। कांग्रेस के अतिरिक्त देश में और भी कई छोटी-बड़ी राजनैतिक संस्थाएँ हैं। इनमें से लिबरल लीग का नाममात्र बाक़ी है। यह नरम दल के लोगों की संस्था है। इस दल के लोगों के विचार बहुत प्रगतिशील नहीं माने जाते। इसलिए जनता का उस ओर कोई ध्यान नहीं है। इसमें कांग्रेस के पुराने नेता शामिल हैं। इसके बाद मुसलिम लीग और हिन्दू सभा का नाम उल्लेख-योग्य है।

मुसलिम लीग—मुसलमानों के कुछ नेता शुरू से ही कांग्रेस के ख़िलाफ रहे हैं। उनका ख्याल रहा है कि काँग्रेस हिन्दुओं की संस्था है। मुसलमानों के हितों का वह कोई ख्याल नहीं करती। इसलिए कुछ मुसलिम नेताओं ने काँग्रेस के जोड़ पर सन्

१९०६ ई० में अपनी एक अलग राजनैतिक संस्था क़ायम की और उसका नाम मुसलिम लीग रक्खा। उस समय लीग का उद्देश्य केवल मुसलमानों के धार्मिक और राजनैतिक हितों की रक्षा करना तथा उन की शिकायतों को सरकार तक पहुँचाना था। कांग्रेस की भाँति लीग का भी प्रतिवर्ष अधिवेशन होता था। परन्तु लीग कांग्रेस से अलग ही रहती थी। इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य पैदा होना शुरू हो गया। सन् १९१० में देश के नेताओं ने हिन्दू-मुसलिम एकता का प्रयत्न किया, परन्तु अधिक सफलता नहीं मिली। उसके बाद सन् १९१६ में लखनऊ में जब कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो दोनों संस्थाओं का समझौता हो गया। लीग ने भी कांग्रेस के साथ मिलकर स्वराज्य-प्राप्ति अपना ध्येय बना लिया। परन्तु अभी दो-तीन साल से लीग फिर अलग हो गयी है।

हिन्दू महासभा—मुसलमानों ने जब अपना संगठन शुरू किया तो उसके जवाब में पुराने विचारों के कुछ सनातनधर्मी हिन्दुओं ने सन् १९२३ में हिन्दू सभा की स्थापना की। बल्कि कहना तो यह चाहिए कि हिन्दू सभा पहले से ही मौजूद थी, परन्तु इस वर्ष उसे विशेष प्रधानता मिल गयी। महासभा का उद्देश्य हिन्दुओं का संगठन, और उनके अधिकारों की रक्षा करना है—ठीक वैसे ही जिस तरह कि मुसलिम लीग का मुसलमानों के

हितों की रक्षा करना है। ऐसी दशा में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि हिन्दू महासभा और मुसलिम लीग आपस में हमेशा लड़ती रहें।

महासभा का ख़याल है कि मुसलमानों की पृथक निर्वाचन की जो माँग है वह उचित नहीं है। वह संयुक्त निर्वाचन चाहती है। उसका कहना है कि काउन्सिलों में हिन्दू और मुसलमान मैम्बरों की संख्या बँधी न होनी चाहिए, वल्कि चुनाव मिलकर होना चाहिए। फिर चाहे कितने ही हिन्दू, या कितने ही मुसलमान काउन्सिलों में पहुँच जायँ। परन्तु मुसलमानों का ख्याल है कि हिन्दुओं की संख्या चूँकि अधिक है इसलिए संयुक्त-निर्वाचन में वे जीत नहीं सकेंगे। इसलिए हर जगह काउन्सिल में, एसेम्वली में, डिस्ट्रिक्ट वोर्डों में, वे अपनी जाति के लोगों के लिए रिज़र्व सीटें चाहते हैं और इस वात के पक्ष में हैं कि उनका चुनाव मुस्लिम जनता द्वारा ही हो। हिन्दू और मुसलिम वैमनस्य की ख़ास वुनियाद यही है।

मुसलिम लीग की तरह हिन्दू महासभा में भी साम्प्रदायिकता का दोष है। वह एकमात्र अपने सम्प्रदाय का हित चाहती है। इससे देश का वड़ा अहित हो रहा है। दोनों की साम्प्रदायिकता इतनी वढ़ गयी है कि दोनों दल के नेता काँग्रेस को अपना विरोधी समझने लगे हैं। महासभा का ख्याल है कि काँग्रेस हिन्दुओं के

हितों का ख्याल नहीं करती और मुसलमानों का पक्षपात करती है। उधर कुछ मुसलिम नेताओं की धारणा है कि कांग्रेस हर मामले में हिन्दुओं का पक्ष लेती है।

इस तरह की बातों से देश की राजनैतिक प्रगति को बड़ी बाधा पहुँच रही है। देश के हिन्दू और मुसलमान नेताओं की समझ में नहीं आ रहा है कि क्या किया जाय। किस तरह से दोनों दलों में एकता लायी जाय। क्योंकि कांग्रेस का उद्देश्य तो स्वराज्य प्राप्त करना है, और स्वराज्य तभी मिलेगा जब हम सब अपने को संगठित करेंगे। इसलिए हिन्दू-मुसलिम ऐक्य के अनेक प्रयत्न अब तक हुए। देश के सब से बड़े नेता गान्धीजी ने सब तरह से मुसलमानों को राज़ी करने की कोशिशें की, परन्तु उनसे कुछ लाभ नहीं हुआ।

देशी रियासतें—हिन्दू-मुसलिम वैमनस्य की तरह एक और समस्या हमारे देश के नेताओं के सामने है। वह समस्या है देशी रियासतों की। हमारे देश में छोटी-बड़ी मिलाकर ५६२ रियासतें हैं। इन रियासतों में पुराने राजवंश के राजे राज्य करते हैं। ये राजे यद्यपि एक प्रकार से स्वतन्त्र हैं, परन्तु ब्रिटिश सरकार की इच्छा के विरुद्ध ये कोई काम नहीं कर सकते। इनका अपना शासन-प्रबन्ध है, अपनी सेना भी है, अदालतें वग़ैरह भी इनकी अपनी हैं, परन्तु इनकी बाहरी नीति पर ब्रिटिश सरकार का

पूरा नियन्त्रण है। ये राजे बाहर के देशों से अथवा अपने ही देश की किसी रियासत से किसी प्रकार की स्वाधीन सन्धि नहीं कर सकते।

ब्रिटिश सरकार के साथ इन राजों की अलग-अलग सन्धियाँ हैं, जिनके अनुसार ये सरकार से बँधे हुए हैं। और सरकार भी इनकी रक्षा का ज़िम्मा लिये हुए है।

प्रायः सभी रियासतों का शासन पुराने ढंग का है। कुछ थोड़ी सी बड़ी रियासतें हैं जिनका शासन-प्रबन्ध उन्नत है और जहाँ जनता को शासन-सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हैं। अन्यथा छोटी रियासतों की प्रजा सुखी नहीं है। वहाँ प्रजा पर राज्य के कर्मचारी मनमाना अत्याचार करते हैं। इसलिए राज्यों में सभी जगह आन्दोलन चल रहा है। काँग्रेस की वजह से देश में जो जाग्रति फैली है उससे देशी राज्यों की प्रजा भी जागी है और शासन-सुधार सम्बन्धी माँगें पेश कर रही है।

ये रियासतें हर मामले में अँगरेज़ सरकार की पक्की समर्थक हैं। उनकी यह इच्छा नहीं कि देश में प्रजा-तन्त्र शासन के भाव फैलें। क्योंकि उन्हें डर है कि उससे उनकी स्वेच्छाचारिता नष्ट हो जायगी। इसलिए जब कभी कांग्रेस इन रियासतों में कोई काम करना चाहती है, तभी ये रियासतें काँग्रेस के प्रति सख़्ती से पेश आती हैं और उसके आन्दोलन को दबा देना चाहती हैं।

रियासतों के इस रुख से देश की राजनैतिक प्रगति में बड़ी बाधा पहुँच रही है। कांग्रेस अब तक स्पष्ट रूप से इन रियासतों के मामले में कोई हस्तक्षेप नहीं करती थी। परन्तु वह अपनी नीति बदल रही है और देशी राज्यों की प्रजा के कष्टों को दूर करने के मामले में वहाँ की जनता की सहायता कर रही है।

चौबीसवाँ अध्याय

स्थानीय स्वराज क्या है ?

शासन के सुभीते के लिए देश को कई भागों में बाँट दिया गया है। इन भागों को प्रान्त कहते हैं। प्रत्येक प्रान्त के शासन का अलग-अलग प्रबन्ध है। इसे स्थानीय शासन या स्थानीय सरकार (लोकल गवर्नमेन्ट) कहते हैं। उदाहरण के लिए युक्त प्रान्त की सरकार को स्थानीय सरकार कहते हैं और भारत की सरकार केन्द्रीय सरकार कहलाती है।

इन प्रान्तों के और छोटे-छोटे हिस्से हैं। इन हिस्सों में यद्यपि सरकार के प्रतिनिधि कलक्टर, डिप्टी कलक्टर, तहसीलदार इत्यादि रहते हैं, परन्तु प्रारम्भिक शिक्षा, सड़कों की देख-भाल, गाँवों की सफ़ाई आदि के प्रबन्ध के लिए एक प्रकार की संस्थाएं बनी हैं। अँगरेजी में इन्हें लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट कहते हैं, और हिन्दी में स्थानीय स्वराज अर्थात् ऐसा शासन जो प्रजा के अपने हाथ में है। ये संस्थाएँ एक प्रकार की छोटी काउन्सिलें हैं।

प्रान्त के शासन के लिए जैसे एक प्रबन्धकारिणी सभा होती है, वैसे ही जिले के प्रबन्ध के लिए ये संस्थाएं होती हैं। इनमें जनता-द्वारा चुने हुए व्यक्ति होते हैं। वे एक जगह बैठ कर, जिले, या नगर या गाँव की प्रारम्भिक शिक्षा, सफ़ाई आदि के प्रबन्ध पर विचार करते हैं। इसलिए इन्हें हम एक प्रकार की पंचायतें कह सकते हैं। इनका उद्देश्य यह है कि स्थानीय शासन के प्रबन्ध में जनता दिलचस्पी ले और स्वयम् शासन करना सीखे, परन्तु ये संस्थाएँ पूर्ण स्वतन्त्र नहीं होतीं। इन पर स्थानीय सरकार का पूरा नियन्त्रण रहता है। इसलिए इनके शासन को उत्तरदायी शासन नहीं कह सकते। ये संस्थाएँ म्युनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, टाउन एरिया, पंचायत आदि के नाम से प्रसिद्ध हैं। सारे जिले की शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के प्रबन्ध के लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड होता है। नगर या बड़े क़स्बे में म्युनिसिपैलिटी होती है। क़स्बे में टाउन एरिया होता है। देहातों में ग्राम-पंचायतें होती हैं।

अँगरेजी राज्य में स्थानीय स्वराज की वास्तविक नींव लार्ड मेयो के जमाने में पड़ी। इसके पहले यद्यपि बम्बई, मदरास और कलकत्ता में एक प्रकार की म्युनिसिपैल्टियाँ स्थापित हो चुकी थीं, (जिन्हें आज भी कारपोरेशन कहते हैं), परन्तु लार्ड मेयो ने म्युनिसिपैल्टियों के अधिकार बढ़ाये और चुनाव को

प्रथा जारी की। वह चाहता था कि प्रत्येक स्थान की जनता अपने यहाँ के स्वास्थ्य, शिक्षा, सफ़ाई आदि के प्रबन्ध में दिलचस्पी ले और स्वयम् शासन करना सीखे। फल-स्वरूप कई बड़े-बड़े शहरों में म्युनिसिपैल्टियाँ खुल गयीं। परन्तु क़स्बों में कोई विशेष प्रचार नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त जो म्युनिसिपैल्टियाँ खुलीं, उनमें सरकारी मैम्बरों का ही प्रभुत्व होता था।

परन्तु लार्ड रिपन के ज़माने में म्युनिसिपैल्टियों की संख्या बढ़ चली। क़स्बों में स्थानीय स्वराज क़ायम करने की ओर उसकी सरकार ने कुछ विशेष ध्यान दिया। क़स्बों और नगरों की म्युनिसिपैल्टियों के लिए नियम बना दिया गया कि किसी भी हालत में सरकारी मैम्बरों की संख्या कुल मैम्बरों की संख्या के पौन से अधिक न होगी। परन्तु इन म्युनिसिपैल्टियों के चेयरमैन बहुत दिनों तक सरकारी अफ़सर ही होते रहे। इसकी वजह से स्थानीय स्वराज शासन का असली उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। क्योंकि सरकारी मैम्बरों और अफ़सरों के सामने जनता के प्रतिनिधियों की बहुत कम चलती थी।

१९१९ ई० के शासन सुधारों के बाद से म्युनिसिपैल्टियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों आदि की दशा कुछ सुधर चली। अब कांग्रेस सरकार इस ओर विशेष ध्यान दे रही है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड—यहाँ हम डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के बारे में कुछ विस्तार से लिखना चाहते हैं। हमारी शिक्षा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के स्कूल से ही शुरू होती है। इसलिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का ज्ञान हमारे लिए आवश्यक है।

हमारे प्रान्त में डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के लिए सन् १९२२ में विशेष रूप से एक क़ानून बना था। प्रान्त के सारे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड इसी क़ानून के अनुसार चलते हैं। इस क़ानून को सन् १९२२ का डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ऐक्ट कहते हैं।

हर ज़िले में एक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड है। वह ज़िले भर के लिए कार्य करता है। हर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में जनता द्वारा चुने हुए मैम्बर और एक चेयरमैन होता है। चुने हुए मैम्बरों की संख्या आवश्यकता के अनुसार १५ से कम या ४० से ज़्यादा नहीं होती। सरकार द्वारा नामजद मैम्बर तीन से अधिक नहीं होते। इनमें एक तो अछूत-जाति का होता है। एक देहात के उन लोगों में से लिया जाता है जिन्हें चुनाव के बाद अपना कोई मैम्बर भेज सकने का मौक़ा न मिला हो। और तीसरा मैम्बर एक स्त्री होती है।

आबादी के हिसाब से मुसलमानों को अपने अलग मैम्बर भेजने का अधिकार है। कुल मैम्बरों में मुसलमान मैम्बर कितने होने चाहिए, यह इस प्रकार निश्चित होता है—

(१) यदि स्थानीय मुसलमानों की आबादी १ प्रतिशत से कम है तो १० प्रतिशत मुसलमान मैम्बर होंगे।

(२) यदि १ प्रतिशत से ज्यादा और ५ प्रतिशत से कम है तो १५ प्रतिशत होंगे।

(३) यदि ५ प्रतिशत से ज्यादा और १५ प्रतिशत से कम है तो २५ प्रतिशत होंगे।

(४) यदि १५ प्रतिशत से ज्यादा और ३० प्रतिशत से कम है तो ३० प्रतिशत होंगे।

(५) यदि ३० प्रतिशत से ज्यादा है तो आबादी के अनुपात से मुसलमान मैम्बर होंगे।

चुनाव के वक्त हर तहसील के वोटरों की लिस्ट तैयार होती है। इसे वोटरों की लिस्ट या इलेक्टोरल रोल कहते हैं।

हर तहसील को सरकिलों में बाँट दिया जाता है। एक तहसील से जितने मैम्बर तजवीज़ होते हैं उतने ही सरकिल बनाये जाते हैं। हर सरकिल से एक मैम्बर चुना जाता है, यद्यपि उम्मेदवार कई खड़े हो सकते हैं। ये मैम्बर जनता द्वारा चुने जाते हैं। चुनने या मत देने वाले को वोटर कहते हैं। वोट देने का अधिकार सब को नहीं होता।

वोटर की योग्यता—अगले पृष्ठ पर दी हुई योग्यताओं के व्यक्ति डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के वोटर बन सकते हैं—

(१) वह ज़मींदार जो सरकार को कम से कम २५ रुपया सालाना मालगुज़ारी देता हो

(२) आगरा प्रान्त का वह मौरूसी काश्तकार जो कम से कम २५ रुपया सालाना लगान देता हो

(३) अवध ताल्लुके का वह दखीलकार काश्तकार जो कम से कम २५ रुपया सालाना लगान देता हो

(४) वह काश्तकार जो कम से कम ३० रुपया सालाना लगान की ज़मीन जोतता हो

(५) वह व्यक्ति जो किसी प्रकार का टैक्स देता हो

और (६) वह व्यक्ति जो मैट्रिक या स्कूल-लीविंग या वर्नाक्यूलर मिडिल पास हो। अथवा भारतवर्ष की किसी यूनीवर्सिटी से विशेष योग्यता की परीक्षा पास किये हो।

कौन वोट नहीं दे सकता—ऊपर लिखी योग्यता होने पर भी यदि किसी व्यक्ति की

(१) उम्र २१ वर्ष से कम हो

(२) यदि वह ब्रिटिश भारत की प्रजा न हो

(३) यदि उसका दिमाग ख़राब बताया गया हो

(४) यदि वह दिवालिया हो

(५) यदि उसे ६ महीने से ज़्यादा की सज़ा मिल चुकी हो

(६) यदि स्थानीय सरकार ने उसे अयोग्य करार दे दिया हो

(७) यदि गवर्नमेन्ट का कुछ रुपया उस पर बाकी हो

तो वह व्यक्ति वोटर नहीं हो सकता।

मैम्बरी के लिए कौन खड़ा हो सकता है--कोई भी व्यक्ति जिसका नाम वोटरों की लिस्ट में हो, अपनी तहसील के किसी सरकिल से डिस्ट्रिक्ट वोर्ड की मैम्बरी के लिए खड़ा हो सकता है।

मैम्बर कौन नहीं हो सकता--परन्तु

(१) यदि कोई व्यक्ति सरकारी नौकरी से हमेशा के लिए वर्खास्त कर दिया गया हो

(२) यदि उसकी वकालत की सनद छीन ली गयी हो

(३) यदि वह वोर्ड में नौकरी करता हो

(४) यदि वह बदचलन हो

(५) या सरकारी नौकर हो

(६) या वोर्ड में मुनाफ़े का कोई काम करता हो, या ऐसे व्यक्ति से ताल्लुक रखता हो जो वोर्ड के ठेके वग़ैरह लेता हो

(७) अँगरेज़ी या हिन्दी-उर्दू पढ़ने या लिखने में असमर्थ हो

तो वह वोर्ड की मैम्बरी के लिए खड़ा नहीं हो सकता।

हर निर्वाचक को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है।

हर सरकिल के वोटरों की दो लिस्टें अलग-अलग वनती हैं (१) एक तो आम वोटरों की लिस्ट जिसमें मुसलमानों को

छोड़ कर अन्य सब लोगों के नाम होते हैं। (२) दूसरी मुसलिम वोटरों की लिस्ट, जिसमें केवल मुसलमान वोटरों के नाम होते हैं।

चुनाव यदि ग़लत हुआ हो, या कोई ग़ैरकानूनी कार्रवाई हुई हो तो उसके लिए जज के यहाँ दरख्वास्त दी जा सकती है। इस तरह की दरख्वास्त को चुनाव की उज्रदारी या इलैक्शन पिटीशन कहते हैं।

चुने हुए मैम्बर तीन वर्ष तक अपने पद पर रहते हैं। उसके बाद फिर नया चुनाव होता है।

मेम्बरों की अलहदगी—यह इस प्रकार हो सकती है।

(१) यदि कोई मैम्बर बोर्ड की लगातार तीन मीटिंगों में शामिल न हो

(२) यदि उसमें ऊपर लिखी कोई अयोग्यता पैदा हो जाय

(३) यदि बोर्ड की नौकरी या कोई मुनाफ़े का काम करने लगा हो

(४) यदि उसने अपने पद का दुरुपयोग किया हो

तो वह मैम्बरी से अलहिदा कर दिया जाता है।

बोर्ड का चेयरमैन—बोर्ड का कोई भी मैम्बर, अथवा अन्य योग्य व्यक्ति चेयरमैन हो सकता है। परन्तु वह किसी म्युनिसिपैलिटी का चेयरमैन, या मैम्बर या कोई सरकारी नौकर न होना चाहिए। साथ ही वह काफ़ी शिक्षित और पढ़ा-लिखा

हो, और अपने कर्त्तव्य का पालन करने की पूरी योग्यता रखता हो।

बोर्ड के मैम्बरों का जब चुनाव हो चुकता है तो मैम्बर चेयरमैन का चुनाव करते हैं। यदि बोर्ड स्वयम् चेयरमैन का चुनाव किसी वजह से न कर सके तो फिर स्थानीय सरकार बोर्ड के लिए चेयरमैन का चुनाव कर देती है। चेयरमैन या तो मैम्बरों में से ही चुन लिया जाता है या बाहर से चुना जाता है।

चेयरमैन के अधिकार और कर्त्तव्य—

(१) बोर्ड का चेयरमैन बोर्ड के नौकरों की तनख़्वाह, छुट्टी, भत्ता आदि के प्रश्न तय करता है

(२) कमिश्नर और ज़िले के हाकिम के पास आमदनी और ख़र्च के नक़शे, रिपोर्ट, बोर्ड की मीटिङ्ग में पास हुए प्रस्ताव की नक़लें यथा-समय भेजता या भिजवाता है

(३) कोई ख़ास वजह न हो तो वह बोर्ड की हर एक मीटिङ्ग में मौजूद रहता है। मीटिङ्ग की तमाम कार्रवाई उसके सभापतित्व में होती है

(४) वह फ़ाइनेन्स-कमिटी का सभापति होता है

(५) यदि वह स्वयम् फ़ाइनेन्स कमिटी का सभापति न बन सके तो मैम्बरों में से किसी एक को सभापति नियुक्त करता है

(६) बोर्ड के सारे प्रबन्ध को देखता है। स्कूलों, मवेशीख़ानों आदि का मुआयना करता है। प्रबन्ध में कोई त्रुटि हो तो उसे बोर्ड के सामने रखता है।

वाइस चेयरमैन—हर बोर्ड में एक वाइस चेयरमैन होता है। यह मैम्बरों में से ही चुना जाता है और चुनाव भी मैम्बर ही करते हैं।

वाइस चेयरमैन एक वर्ष के लिए अपने पद पर रहता है। उसके बाद फिर चुनाव होता है। वही वाइस चेयरमैन दुबारा भी चुना जा सकता है।

चेयरमैन की ग़ैरहाज़िरी में वाइस चेयरमैन, चेयरमैन के सारे कर्त्तव्य पालन करता है।

फ़ाइनेन्स कमिटी—बोर्ड की आमदनी और ख़र्च का प्रबन्ध करने, किस मद में कितना ख़र्च हो, कितना न हो इसका विचार करने, और आमदनी और ख़र्च का सालाना बजट बनाने के लिए एक कमिटी होती है। इसे फ़ाइनेन्स कमिटी कहते हैं। इस कमिटी में एक चेयरमैन, और बोर्ड के ६ और मैम्बर होते हैं।

तहसील कमिटी—एक तहसील से बोर्ड के जितने मैम्बर होते हैं वे सब मिल कर एक कमिटी बनाते हैं। इसे तहसील कमिटी कहते हैं। यह कमिटी तहसील के प्रबन्ध सम्बन्धी मामलों में बोर्ड की सहायता करने के लिए होती है।

शिक्षा कमिटी—जिले में शिक्षा-प्रचार और स्कूलों आदि का प्रबन्ध करने के लिए एक शिक्षा-कमिटी होती है। इसमें १२ मैम्बर होते हैं। इनमें से ८ तो बोर्ड द्वारा बोर्ड के मैम्बरों में से चुने जाते हैं, और बाक़ी चार बाहर के होते हैं। इन चार में से दो शिक्षा-विभाग के सरकारी कर्मचारी होते हैं। कमिटी अपना एक चेयरमैन चुनती है। इसी प्रकार एक वाइस-चेयरमैन भी चुना जाता है। परन्तु वह एक वर्ष के लिए ही होता है। स्कूलों का डिप्टी-इन्सपेक्टर इस कमिटी का सेक्रेटरी होता है। जिले के शिक्षा-प्रबन्ध के लिए यह कमिटी ही जिम्मेवार होती है। बोर्ड के चेयरमैन को उसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होता।

सेक्रटरी—हर बोर्ड में एक सेक्रेटरी होता है। इसकी नियुक्ति बोर्ड द्वारा होती है। वह बोर्ड का नौकर होता है। बोर्ड से उसे तनख्वाह मिलती है।

बोर्ड के कर्त्तव्य-कर्म—हर डिस्ट्रिक्टबोर्ड को अपने जिले के भीतर निम्न-लिखित कार्य करना और देखना पड़ते हैं।

(१) सड़कों और पुलों का बनवाना, उनकी सफ़ाई और सालाना मरम्मत करवाना ;

(२) सड़कों के किनारे पेड़ लगवाना और उनकी हिफ़ाज़त का इन्तज़ाम करना ;

(३) अस्पताल, अनाथालय, डाक-बंगला, सार्वजनिक बगीचे और पार्क, बाज़ार की दूकानें आदि बनवाना और उनका प्रबन्ध करना

(४) स्कूल खोलना और बनवाना, उनकी मरम्मत का इन्तज़ाम करना और उनका मुआयना करना

(५) कुएँ, नहर आदि बनवाना और उनकी मरम्मत करना

(६) दुर्भिक्ष के दिनों में दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता करना

(७) मवेशीख़ाने खोलना, उनका इन्तज़ाम और मुआयना करना

(८) नदियों के घाट पर खेवा का प्रबन्ध करना

(९) नुमाइश और मेले वग़ैरह लगवाना, उनका इन्तज़ाम करना ; ढोरों की नस्ल सुधारना, उनकी चिकित्सा का प्रबन्ध करना

(१०) टीका लगाने का प्रबन्ध करना

(११) पीने के लिए साफ़ पानी का बन्दोबस्त करना

(१२) हैज़ा, प्लेग, आदि बीमारियों के फैलने पर जनता की सेवा-सुश्रूषा का प्रबन्ध करना और दवादारू बाँटना

(१३) बोर्ड की जो ज़मीन और सम्पत्ति हो उसका प्रबन्ध करना

ये सब बोर्ड के आवश्यक कार्य हैं। इनके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर वह और भी कई कार्य अपने ज़िम्मे ले सकता है। उदाहरण के लिए जन्म और मृत्यु का लेखा रखना। मनुष्य-गणना करना। ज़मीन जायदाद बनवाना और उस पर दख़ल करना, इत्यादि।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की आमदनी—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की आमदनी के कई ज़रिये हैं। चुंगी या टैक्स उनमें से ख़ास हैं।

कुछ आमदनी तो जनता पर हैसियत के मुताबिक़ टैक्स लगाने से होती है। कुछ जमीन आदि के लगान से होती है। कुछ बियाई, तुलाई, और आढ़त पर चुंगी लगाने से होती है। कुछ इक्के और गाड़ियों पर 'रोड टैक्स' से होती है। कुछ बाजार में बैठकर चीज़ें बेचने वालों पर 'टैक्स' लगाने से होती है जिसे तहबाज़ारी कहते हैं। फिर उन स्थानों पर जहाँ नदियों का पुल नहीं बनाया जा सकता, बरसात के दिनों में नाव से और गरमियों में पीपों के पुल बना कर माल-असबाब, गाड़ी-सवारी आदि के पार उतारने का प्रबन्ध किया जाता है। और इसी प्रकार नदियों के खादर में होकर कामचलाऊ सड़कें बनायी जाती हैं। इन पर भी 'टोल टैक्स' लिया जाता है। स्कूलों की फ़ीस इत्यादि, और मवेशीख़ानों से भी कुछ आमदनी होती है। इन सब के अतिरिक्त प्रान्तीय सरकार से भी उसे आर्थिक सहायता मिलती रहती है।

आमदनी का यह सब रुपया बोर्ड के फ़ंड में जमा होता है और बोर्ड का ख़र्च इसी फ़ंड से चलता है।

बजट—साल के आख़िर में साल भर की आमदनी और ख़र्च का पूरा हिसाब बोर्ड के सामने पेश होता है। साथ ही

अगले साल का बजट (आय-व्यय का चिट्ठा) भी बोर्ड के सामने रक्खा जाता है। यह कार्य चेयरमैन और सेक्रेटरी की सहायता से फाइनेन्स कमिटी करती है। बोर्ड के मैम्बर बजट पर विचार करते हैं। आमदनी कैसे बढ़ाई जा सकती है, कैसे खर्च कम किया जा सकता है, कहाँ कौन सी सड़कें बननी हैं, कहाँ स्कूल खुलने हैं, इन सब बातों की आलोचना करने के बाद बजट पास होता है और अगले साल उसी के अनुसार कार्य होता है।

तुम देखोगे कि बोर्ड के मैम्बरों का काम बड़ी ज़िम्मेदारी का है। ज़िले भर की शिक्षा, स्वास्थ्य, सफ़ाई आदि का प्रबन्ध उनके ही हाथ में होता है। इसलिए इन मैम्बरों का योग्य होना बहुत आवश्यक है। मैम्बर योग्य हैं या नहीं यह देखना मत-दाताओं (वोटरों) का काम है। ऊपर हमने बोड का मैम्बर बनने के लिए योग्यता की जो सूची दी है वह तो क़ानूनी हदबन्दी है। मैम्बर बनने की योग्यता दरअसल दूसरी चीज़ है। एक ज़मींदार भले ही मैम्बरी के लिए खड़ा हो सके, परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वह वास्तव में जनता की सेवा करने योग्य है। यह बात तो वोटर ही देख सकते हैं कि जिसे उन्होंने मैम्बर चुना है वह वास्तव में बोर्ड में जाकर उनका कुछ हित कर सकता है या नहीं। अधिकांश व्यक्ति केवल नामवरी के लिए ही मैम्बर बनते हैं। इस प्रकार के लोगों को कभी वोट नहीं मिलना चाहिए।

क्या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से तुम्हारा कुछ परिचय है? क्या तुम डिस्ट्रिक्टबोर्ड के चेयरमैन को जानते हो? क्या एज्युकेशन कमिटी के चेयरमैन से तुम्हारा परिचय है? क्या तुम अपनी तहसील के मैम्बरों को जानते हो? तुम्हारा कर्त्तव्य है कि इन सबके बारे में जानकारी हासिल करो, और देखो कि ये वास्तव में अपने जिले की, तहसील की, या गाँव की कुछ सेवा करते हैं या लोगों पर अपना रुआब जमाने के लिए ही मैम्बर बने हैं।

क्या तुमने कभी डिस्ट्रिक्टबोर्ड के चुनाव में दिलचस्पी ली है? क्या तुमने डिस्ट्रिक्टबोर्ड का कोई चुनाव देखा है?

बहुधा एक सरकिल से दो या दो से अधिक उम्मेदवार खड़े होते हैं। ऐसी हालत में ये दोनों उम्मेदवार अक्सर बुरे तरीक़े से चुनाव लड़ते हैं। एक दूसरे की बुराई करते हैं। एक दूसरे के खिलाफ़ परचे छापते हैं। हर उम्मेद्वार यह बताने का प्रयत्न करता है कि जिले या गाँव की सेवा करने की योग्यता उसमें सबसे अधिक है। इसलिए वोट उसे ही मिलना चाहिए। उसे ही डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का मैम्बर चुना जाना चाहिए। दूसरा उम्मेदवार भी इसी तरह की बातें कहता है। वह भी जनता में अपने नाम का प्रचार करता है, और अपने प्रतिपक्षी को हरा कर स्वयम् मैम्बर बनना चाहता है।

यह सचमुच बड़ा अजीब है। क्योंकि बोर्ड तो सेवा की जगह है। वह हुकूमत की जगह नहीं है। वहाँ कोई वेतन नहीं मिलता। वहाँ तो जनता की सेवा करनी पड़ती है। सेवा के लिए लड़ने की जरूरत क्या ? जिसमें सेवा का भाव है, जो समाज या देश की कुछ सेवा करना चाहता है वह तो कहीं से भी ऐसा कर सकता है। उसे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में जाने की जरूरत नहीं, और यदि वह जाना भी चाहता है तो अपने को जनता की सेवा के योग्य बनाना उसका पहला धर्म है। फिर किसी से लड़ने की जरूरत उसे नहीं होगी। जनता स्वयम् उसे वोट देगी।

परन्तु एक दिक्कत यह भी है कि जनता उम्मेदवार की योग्यता देखकर वोट नहीं देती। वह प्रभाव से वोट देती है। एक हलक़े से यदि दो उम्मेदवार खड़े हुए हैं और उनमें से यदि एक साधारण हैसियत का है, और दूसरा यदि बड़ा ज़मींदार है तो ज़मींदार को ही अधिक वोट मिलते हैं। फिर चाहे योग्यता में साधारण हैसियत का आदमी ही बड़ा हो। वोट देने का यह तरीक़ा बड़ा ग़लत है। इससे प्रजातन्त्र शासन का कोई महत्व नहीं रह जाता। वोट तो हमेशा योग्य व्यक्ति को ही मिलना चाहिए। फिर चाहे वह अमीर हो या ग़रीब, ज़मींदार हो या किसान, हिन्दू हो या मुसलमान। और फिर वोट चाहे किसी बोर्ड के लिए हो या काउन्सिल के लिए।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या इस प्रकार की किसी भी स्वराज-संस्था में अमीर या गरीब से क्या मतलब ? वहाँ तो योग्यता की जरूरत है। वहाँ तो ऐसे आदमी चाहिए जो निस्वार्थ भाव से जिले या प्रान्त की सेवा कर सकें, जिले या गाँव की शिक्षा, स्वास्थ्य, सफ़ाई आदि का प्रबन्ध और तरक्की कर सकें।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड स्वराज्य-शिक्षा के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इसलिए जनता का कर्त्तव्य है कि उत्साही और समाज-सेवी व्यक्तियों को ही अपना वोट दे।

म्युनिसिपैलिटी—हर जिले के सदर मुकाम में एक म्युनिसिपैलिटी होती है। इसकी व्यवस्था और अधिकारों में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा है। परन्तु अब इसके अधिकार बढ़ते जा रहे हैं।

इस समय म्युनिसिपैल्टियों के मैम्बरों में आधे से अधिक ऐसे होते हैं जो जनता द्वारा चुने हुए मैम्बर होते हैं। सरकारी मैम्बरों की संख्या अधिक नहीं होती।

पहले म्युनिसिपैल्टियों के चेयरमैन सरकारी अफ़सर होते थे किन्तु अब साधारणतः सब जगह मैम्बर अपना ही चेयरमैन चुनते हैं। मैम्बरों का चुनाव तीन-तीन वर्ष के बाद हुआ करता है। चुनाव के लिए नगर के भिन्न-भिन्न भाग किये जाते हैं। उन्हें वार्ड कहते हैं। वार्ड में रहने वाले लोग वोटर (मत-दाता) कहलाते हैं।

सभी को वोट देने का अधिकार नहीं होता वह मनुष्य वोट दे सकता है जो एक ख़ास रक़म मकान-किराया में देता हो, या एक ख़ास योग्यता रखता हो या एक ख़ास मूल्य की सम्पत्ति का मालिक हो।

म्युनिसिपैलिटी के सुपुर्द साधारणतः स्वास्थ्य-रक्षा, शिक्षा प्रचार, व्यापार आदि का प्रबन्ध रहता है। वह नगर की सफ़ाई का प्रबन्ध करती हैं। नल वग़ैरः लगवाती है। रोशनी का प्रबन्ध करती है। बीमारी के समय दवा-दारू का प्रबन्ध करती है।

म्युनिसिपैलिटी की आमदनी के कई ज़रिये हैं। सबसे बड़ा ज़रिया है टैक्स। बाहर से आने वाले माल पर वह टैक्स लगाती है। इसे चुंगी कहते हैं। इसी तरह मकान, व्यापार, मोटर आदि पर वह टैक्स लगा सकती है।

फिर म्युनिसिपैलिटी को अपनी जायदाद से भी आमदनी होती है। म्युनिसिपैलिटी के पास जो ज़मीन होती है, उसे वह बेच सकती है, या किराये पर उठा सकती है। यह नज़ूल कहलाती है इसके अलावा स्थानीय सरकार से भी म्युनिसिपैलिटियों को रुपया मिलता है।

टाउन एरिया—म्युनिसिपैलिटी, और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, के अलावा युक्तप्रान्त में टाउन एरिया भी हैं। इनकी रचना भी उसी प्रकार की गयी है। टाउन एरिया छोटे क़स्बों में होता

है। स्थानीय सरकार किसी भी क़स्बे को टाउन एरिया बना सकती है।

टाउन एरिया का कार्य अपने क़स्बे में शिक्षा का प्रचार, रोशनी का प्रबन्ध, सड़कों की सफ़ाई, पानी का इन्तज़ाम, आदि करना है। टाउन एरिया सड़कें बनवाने का प्रबन्ध भी करता है।

टाउन एरिया के प्रबन्ध के लिए एक टाउन कमिटी होती है। इसमें ५ से लेकर ७ तक मैम्बर होते हैं। इनके बीच में एक सभापति होता है। एक मैम्बर अछूत जाति का भी होता है और उसका चुनाव ज़िले का हाकिम करता है। ये मैम्बर चार वर्ष तक अपने पद पर रहते हैं। उसके बाद फिर दूसरा चुनाव होता है। चुनाव डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की तरह ही होता है।

टाउन एरिया की आमदनी--टाउन एरिया की आमदनी के ज़रिये कई हैं। प्रथम तो टाउन एरिया क़स्बे के लोगों पर उनकी हैसियत के मुताबिक़ टैक्स लगाता है। नज़ूल की जमीन किराये पर या पट्टे पर देता है। क़स्बे का घास-कूड़ा वग़ैरह बेचकर पैसे लेता है। इसके अलावा स्थानीय सरकार से भी उसे सहायता मिलती है।

आमदनी की यह रक़म टाउन एरिया-कमिटी के निश्चय के अनुसार, सड़कें, कुएँ, वग़ैरह बनवाने, रोशनी करने, बाज़ार की सफ़ाई करवाने आदि कामों में ख़र्च होती है।

पंचायत—इस प्रकार का स्वराज शासन हमारे देश में बहुत पहले से चला आ रहा है। वैदिक युग में हरेक गाँव की एक सभा होती थी। इस सभा का एक सभापति होता था। गाँव के मामले इस सभा में पेश होते थे। सभा जो फैसला देती थी, वही होता था।

यह व्यवस्था हमारे गाँवों में आज भी मौजूद है। हरेक गाँव में बड़े-बूढ़े आदमियों की एक पंचायत होती है। यह पंचायत गाँव के सब आर्थिक और सामाजिक मामले सुनती है और उनका फ़ैसला करती है। इसके अलावा हरेक जाति की अपनी पंचायत भी होती है। जब कभी कोई जाति-सम्बन्धी मामला उठता है तो पंचायत बैठती है और उस पर विचार करती है। इस प्रकार हरेक गाँव में अपना एक पंचायती राज्य होता है।

वर्त्तमान समय में हमारे युक्तप्रान्त में जो ग्राम-पंचायतें बनी हैं, उनका संगठन सन् १९२० के पंचायत ऐक्ट के मुताबिक होता है। एक गाँव में एक पंचायत होती है। कभी-कभी कई गाँवों को लेकर भी एक पंचायत बना दी जाती है।

पंचायत में कम से कम ५ और ज्यादा से ज्यादा ७ मेम्बर होते हैं। इन पंचों की नियुक्ति गाँव के लोगों में से ही जिले का हाकिम करता है। उनमें से एक को सरपंच बना दिया जाता है, जो पंचायत का सभापति होता है। पंचायत में दीवानी

के २५ रुपये तक के मामले पेश हो सकते हैं। इसके अलावा फ़ौजदारी के साधारण मामले भी पंचायत सुन सकती है। पंचायत १० रुपया तक जुर्माना कर सकती है। उनको जेल की सज़ा देने का भी अधिकार होता है। कुछ पंचायतों को स्थानीय सरकार ने अधिक अधिकार दे रक्खे हैं। पंचायत के फ़ैसले या डिग्री की कोई अपील नहीं होती। और वकील या मुख्तार किसी पक्ष की तरफ़ से पंचायत में खड़े नहीं हो सकते।

कुएँ और सड़कें बनवाना, गाँव की सफ़ाई, कराना और शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का प्रबन्ध करना, यह सब पंचायतों के काम हैं। हर पंचायत का अपना एक पंचायत-फ़ंड होता है। जुर्माने या दान से जो रुपया मिलता है, वह इसी फ़ंड में जमा होता है। फ़ंड का रुपया गाँव की सार्वजनिक उन्नति में खर्च किया जाता है।

हमारे प्रान्त की कांग्रेस सरकार इस स्वराज शासन की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दे रही है। वह ग्राम-पंचायतों के अधिकारों में वृद्धि करना चाहती है और ग्राम-सुधार सम्बन्धी शासन को सुदृढ़ और सुसंगठित करने की फ़िक्र में है। प्रान्तीय स्वराज्य के बढ़े हुए अधिकारों की नींव वह जनता के समर्थन द्वारा सुदृढ़ करना चाहती है।

———